।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

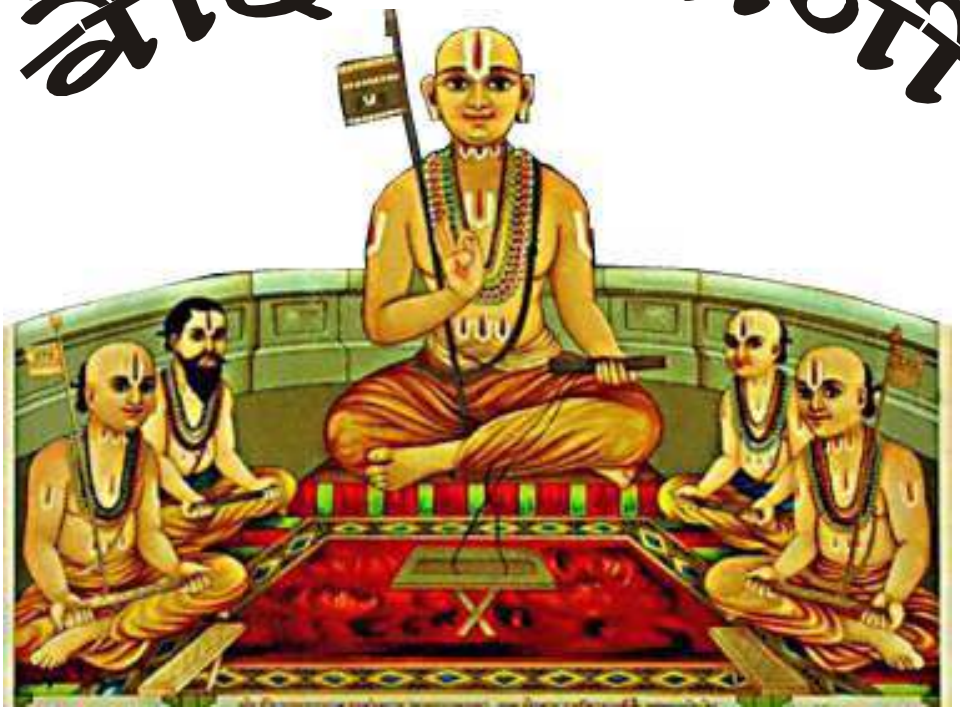

वर्ष- २८ दिसम्बर- २०१५	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अङ्क- १ रामानुजाब्द ९९६ त्रैमासिक प्रकाशन

न मृषा परमार्थमेव मे शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः ।
यदि मे न दयिष्यसे ततो दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः ।।

हे नाथ! पहले तो मेरा एक निवेदन सुनिए, मैं असत्य नहीं केवल सत्य ही कह रहा हूँ। यदि मुझ पर आप दया नहीं करेंगे, तो मेरे जैसा दयनीय पात्र आपको अन्यत्र नहीं मिलेगा ।।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

****

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	वैदिक-वाणी	३
२.	अवन्तिका	४
३.	ऊर्ध्वपुण्ड्रतिल अवश्य धारण करें	९
४.	परमात्मा के पास पहुँचने के लिए दीक्षित अवश्य हों	१२
५.	कुलशेखर आलवार	१५
६.	शेषावतार श्रीरामानुजाचार्य का दार्शनिक विचार	१९
७.	महर्षियों का अपूर्व चमत्कार	२२
८.	द्रौपदी की आर्तपुकार पर साड़ी बने भगवान्	२४
९.	गुरु-शिष्य संवाद	२६
१०.	भक्तिरस से विभोर मिथिलापुरी	२८
११.	विष्णुसहस्रनाम के (१४६-१६८) नामों का विशद् भाष्य (हिन्दी में)	३०
१२.	गायत्री मन्त्रार्थ रामायण	३२
१३.	अर्चिरादिमार्ग	३४
१४.	भूमिहारब्राह्मणकी उत्पत्ति	३५
१५.	विभिधमुहूर्त्त	३८

●

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) ४० रुपये तथा आजीवन सदस्यता ५०१ रुपये मात्र है।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेंगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

वैदिक-वाणी

आचार्यवान् पुरुषो वेद
तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये

प्रत्यक्ष चीजों का ज्ञान स्वस्थ इन्द्रियों से होता है; परन्तु परोक्ष वस्तु के ज्ञान के लिए युक्ति और प्रमाण की आवश्यकता होती है। ब्रह्म और जीव पृथिवी, जल आदि की तरह प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय नहीं है। इसलिए उनमें संशय उत्पन्न होता है। उस सन्देह का निवारण के लिए युक्ति और प्रमाण का सहारा लेना आवश्यक होता है।

एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा कि ब्रह्म को कैसे जाना जा सकता है?

गुरुजी ने शिष्य से एक नमक का टुकड़ा मँगवाया और उसे कटोरा के जल में डलवा दिया। शिष्य द्वितीय दिन गुरु के पास आया। गुरुजी ने शिष्य से कहा कि कल कटोरा के जल में जो नमक रखा था उसे निकाल कर ले आओ। शिष्य ने कटोरा के जल में नमक खोजा किन्तु वह नहीं मिला। शिष्य ने कहा गुरुदेव इसमें नमक नहीं है। गुरुजी ने कहा कि ऊपर से थोड़ा जल मुख में डालो। शिष्य ने जल से आचमन कर कहा कि जल नमकीन है। आचार्य जी ने कहा कि बगल से और नीचे से भी जल निकाल कर आचमन कर लो। शिष्य ने बगल और नीचे के जल से आचमन करके कहा कि सब तरफ से जल पीने पर नमकीन ही अनुभव होता है।

गुरुजी ने कहा कि जैसे पहले नमक का दर्शन और स्पर्श होता था; परन्तु जब वह जल में विलीन हो गया तब उसका दर्शन और स्पर्श का अभाव हो गया, किन्तु जीभ से उसकी उपलब्धि हो रही है। उसी प्रकार ब्रह्म जल में नमक की भाँति जड़-चेतन में व्याप्त है। उसका दर्शन नहीं होने पर भी वह उपाय से समझा जाता है।

शिष्य ने कहा कि गुरुदेव! सर्वत्र अप्रत्यक्ष रूप से व्याप्त ब्रह्म का ज्ञान जिस उपाय से हो सकता है, उसे दृष्टान्त द्वारा समझाने की कृपा करें।

गुरुजी दृष्टान्तपूर्वक ब्रह्मज्ञान का उपाय अपने शिष्य को बतलाते हैं—गान्धार देश में रहने वाला एक व्यक्ति के घर धन चुराने के लिए कुछ चोर प्रवेश कर गये। चोरों ने उस व्यक्ति की आँखें बाँधकर धन ले लिया और आँखें बाँधे ही उस व्यक्ति को दूसरे देश में ले जाकर छोड़ दिया। वह व्यक्ति जोर-जोर से बार-बार कहने लगा कि मेरा गान्धार देश किधर है। एक व्यक्ति उसकी आवाज सुनकर दयावश उसके पास आया और उसकी आँखें खोलकर गान्धार देश की दिशा बतला दिया। जिसकी आँखें बँधी थी उसकी आँखें जब खुल गई और उसने गान्धार देश की दिशा का ज्ञान प्राप्त कर लिया तब वह बुद्धिमान् पुरुष पूछता हुआ अपने स्थान को चला गया।

उसी प्रकार पुण्य-पाप रूप चोरों ने मोह रूप पट्टी से ज्ञान रूप नेत्र को बाँधकर हड्डी, मांस, मज्जा आदि से पूर्ण शरीर रूप वन में जीव को डाल दिया है। यह जीव स्त्री, पुत्र, धन आदि में आसक्त होने के कारण पुत्रादि के संयोग एवं वियोग जन्य दु:ख तथा बुढापा आदि अनेक प्रकार के कष्टों से पीड़ित होकर कष्ट दूर करने के लिए चिल्लाता है।

वैसे समय में परम दयालु परमात्मा की दया से जीव ब्रह्मवेत्ता आचार्य को प्राप्त करता है। आचार्य दयावश सांसारिक विषयों में दोष दिखाकर

अपने सदुपदेश से मोह रूप पट्टी को खोलकर ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करा देते हैं। अत: ब्रह्मवेत्ता आचार्य पुरुषों से ही ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है और उससे हड्डी, मांस, मज्जा आदि से पूर्ण शरीर से जीव मुक्ति पाता है।

इसलिए वेदान्त कहता है–'आचार्यवान् पुरुषो वेद' अर्थात् सुयोग्य आचार्य के बिना जीव का कल्याण नहीं होता। सुयोग्य श्रीवैष्णव आचार्य से जिसे ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाता है उसे शरीर छूटने मात्र भर ही मुक्ति में विलम्ब होता है। वह शरीरपात होते ही सदा के लिए कष्ट से मुक्त हो जाता है।

●

अवन्तिका

अयोध्यामथुरामाया काशीकाञ्चीरवन्तिका।
पुरीद्वारावतीचेति सप्तैतेमोक्षदायिका।।

उज्जैन भारत का एक प्रसिद्ध एवं प्राचीन नगरी है। उसका प्राचीन नाम अवन्तिका था। इस नाम के अतिरिक्त यह कनकशृङ्गा, कुशस्थली, विशाला, पद्मावती, प्रतिकल्पा आदि नामों से भी यह नगरी पूर्व में पुकारी गयी है। अवन्तिका नगरी न केवल प्राचीन अपितु परम पवित्र नगरी के रूप में जानी जाती रही है। पुराणों के अनुसार जैसे अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, काञ्ची एवं द्वारिका मोक्षदायिका पुरियाँ हैं उसी प्रकार अवन्तिका भी मोक्षदायिका पुरी है।

यह नगरी क्षिप्रा नदी के तट पर वसी है। क्षिप्रा नदी भी भारत की गङ्गा, यमुना, सरस्वती, सिन्ध, नर्मदा, गोरावरी आदि नदियों की भाँति एक पवित्र नदी है। पुराणों में इस नदी को ज्वर और पाप को मिटाने वाली नदी कहा गया है। उज्जैन को भारत का नाभिस्थल माना गया है। तन्त्र ग्रन्थों में नाभिस्थान पर मणिपूरक चक्र बताया गया है। इस कारण अवन्तिका को भारत का मणिपूरक स्थल भी कहा गया है।

यह नगरी मालवा के पठार पर समुद्र तट से १६७९ फीट की ऊँचाई पर बसा है। रेलों और सड़कों से यह स्थान भारत के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ा है। पश्चिम रेलवे का यह जंक्शन है। उज्जैन नाम के जिले और इसी नाम के संभाग का यह मुख्यालय है। धर्म, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा, राजनीति और जयोतिष का यह नगर सदियों से एक प्रमुख केन्द्र रहा है। यदि भारत के इतिहास से उज्जयिनी को हटा दिया जाय तो सारा का सारा इतिहास अधूरा हो जायेगा। इस नगर को वैसे भगवान् विष्णु ने बसाया है; परन्तु बाद में उज्जैन महाकालेश्वर नगर के रूप में प्रसिद्ध हो गया। महाकाल को इस क्षेत्र का अधिपति माना जाता है। भारत के कोने-कोने से लोग क्षिप्रा में स्नान करने, भगवान् विष्णु तथा महाकालेश्वर का दर्शन करने तथा यहाँ के अन्य दर्शनीय स्थलों को निहारने के लिये भारी संख्या में आते हैं। क्षिप्रा नदी की उत्पत्ति भगवान् वराह के हृदय से हुई है। यहाँ प्रत्येक १२ वर्षों में सिंहस्थ गुरु के होने पर कुम्भ महापर्व का मेला लगता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक १२ महीने में कार्तिक का मेला सम्पन्न होता है। उज्जयिनी का इतिहास गौरवमय व हजारों वर्ष पुराना है। यहाँ पर गढ़ नाम के स्थान पर पुरातत्त्व वालों ने जो खुदाई की उससे ३००० वर्ष पुराने उज्जैन की बहुत-सी जानकारी प्राप्त हो जाती है। उज्जैन के अति प्राचीन राजा हैह्यवंश के थे। फिर प्रद्योतवंश के राजा लोग उज्जैन में शासक रहे। इसके बाद उज्जैन मगध राज्य का एक हिस्सा बन गया। अत एव यह नन्दों और मौर्यों के अधीन आ गया।

ईसा के जन्म के कुछ पहले उज्जैन पर विदेशी शक लोगों के आक्रमण हुए। बाद में परमवीर

न्यायी पुरुष विक्रमादित्य ने उन्हें खदेड़कर बाहर किया। पर विक्रमादित्य के बाद शक फिर उज्जैन में घुस आये और लगभग ३०० वर्ष तक शासन करते रहे। अन्त में चौथी शताब्दी में गुप्त राजाओं ने शकों के राज्य को समाप्त कर दिया। इसके उपरान्त उज्जैन पर कलचुरियों, चालुक्यों, उत्तर-गुप्तों, इतिहारों तथा राष्ट्रकूटों का राज्य रहा। दशवीं से तेरहवीं शताब्दी तक परमार राजाओं की तूती सारे मालवा में दूर-दूर तक बोलती रही।

मुस्लिम सुल्तान इल्तुतमिश ने उज्जैन पर आक्रमण करके यहाँ मन्दिरों को तोड़ा और अनेक लोगों को कत्लेआम किया। परिणाम स्वरूप उज्जैन की प्राचीन गरिमा नष्ट हो गई। लगभग ५०९ वर्षों तक उज्जैन पर मुगल शासन कायम रहा। अट्ठारहवीं शताब्दी में उज्जैन मराठों के अधीन आ गया। कुछ समय तक तो सिंधिया राज्य की राजधानी भी उज्जैन रही। इसी क्रम में उज्जैन ने पुनः प्रगति आरम्भ कर दी और आज वह भारत का एक प्रसिद्ध नगर एवं तीर्थ-स्थल के रूप में जाना जाता है।

तीर्थों का नगर उज्जैन

उज्जैन क्षेत्र में परमपुण्यमयी क्षिप्रा नदी, दिव्य-नवनदी, नीलगङ्गा तथा गन्धवती–ये चार नदियाँ प्रवाहित होती हैं। इस क्षेत्र में भगवान् विष्णु, ब्रह्मा एवं अन्य सभी देवता निवास करते हैं। यह एक योजन का क्षेत्र देवमण्डल से व्याप्त है। यहाँ दस विष्णु प्रसिद्ध हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं— वासुदेव, अनन्त, बलराम, जनार्दन, नारायण, हृषीकेश, वराह, धरणीधर, वामन रूपधारी विष्णु तथा लक्ष्मी जी के आश्रयभूत भगवान् शेषशायी। ये दस विष्णु सब पापों का अपहरण करने वाले बताये गये हैं।

यहाँ चौरासी रूप में शिवजी निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त आठ भैरव, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, छः गणेश तथा चौबीस देवियाँ यहाँ निवास करती हैं। इस पुरी के चार द्वारपाल हैं, जो महात्मा पुरुषों को विदित है। पूर्व द्वार पर पिङ्गलेश्वर, दक्षिण द्वार पर कायावरोहणेश्वर, पश्चिम द्वार पर विल्वकेश्वर तथा उत्तर द्वार पर उत्तरेश्वर विद्यमान हैं। भूतल पर पुष्करादि जो कोई भी तीर्थ हैं, वे सब उत्तम महाकाल वन में वर्तमान हैं।

एक वर्ष में जितने दिन होते हैं, उतने दिन तक प्रतिदिन यहाँ मनुष्य नये-नये प्रसिद्ध तीर्थों का स्नान प्राप्त करता है। एक वर्ष पूरा होने पर अवन्तीपुरी की यात्रा सम्पन्न होती है। जो विधिपूर्वक अवन्ती यात्रा पूर्ण कर लेता है, वह देवताओं में श्रेष्ठ होता है। इसलिए मोक्ष चाहने वाले पुरुष को बड़े यत्न से अवन्तीपुरी की यात्रा करनी चाहिये। विशेषतः वैशाख मास में अवन्तीपुरी में स्नान करना चाहिए। जो वैशाख मास आने पर अवन्तीपुरी में जाता और एक वर्ष तक वहाँ रहकर प्रतिदिन विधिपूर्वक एक-एक तीर्थ में स्नान करता है और सब प्रकार की वस्तुएँ दान देता है, वह तीर्थसेवन के पूर्णफल को प्राप्त करता है।

इस भूतल पर क्षिप्रा के समान दूसरी कोई नदी नहीं है, जिसके दर्शन मात्र से मुक्ति हो जाती है। जो वैशाख मास में भगवान् पुरुषोत्तम का प्रतिदिन पूजन करता है, वह पापमोचन तीर्थ में एक बार तर्पण करने मात्र से मुक्त हो जाता है। जो लोग अवन्तीपुरी में अङ्कपाद नामक भगवान् विष्णु का दर्शन करते हैं, उनका इस संसार में पुनरागमन नहीं होता। जो सम्पूर्ण तीर्थों के फल की इच्छा रखने वाला हो, वह पवित्र होकर मन-इन्द्रियों को संयम में रखते हुए तीर्थ-स्थान का व्रत ग्रहण करे और अट्ठाईस तीर्थों में गोता लगावे।

शिप्रा नदी के तट पर जो प्रधान-प्रधान पुण्य तीर्थ हैं, उनका सामान्य रूप से वर्णन अब किया जा रहा है। पापपीड़ित मनुष्य 'विष्णु-विष्णु' का स्मरण करता हुआ स्नातक ब्रह्मचारियों के पालन

करने योग्य सभी नियमों को ग्रहण करे। पश्चात् रुद्र सरोवर में स्नान करके श्राद्ध-तर्पण आदि करे। तदनन्तर कर्कराज नामक तीर्थ स्वरूप तडाग को जाय और उसमें स्नानादि करके घृतपात्र दान करे। उसके बाद जो परम उत्तम नृसिंह तीर्थ है, उसमें स्नान करे और काला मृगचर्म दान दे। वहाँ से क्षिप्रा और नीलगङ्गा के सङ्गम पर जाँय। वहाँ से व्रती पुरुष पिशाचमोचन तीर्थ की यात्रा करे। उसमें विधिपूर्वक स्नान करके दैनिक कृत्य करे।

उज्जैन के दर्शनीय स्थल

श्रीराम मन्दिर—उज्जैन स्थित श्रीराम मन्दिर आकर्षक, भव्य एवं विशाल है। इस मन्दिर में श्रीराम, लक्ष्मण एवं श्रीजानकी जी की दर्शनीय प्रतिमाएँ हैं। इसके अतिरिक्त शिव और दुर्गा की भी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। मन्दिर सङ्गमरमर पत्थर द्वारा कलात्मक ढंग से निर्मित है। इसके समीप ही गीता मन्दिर, रामानुजकोट, रामघाट एवं क्षिप्रा नदी है।

श्रीगोपाल मन्दिर—पटनी बाजार (जवाहर मार्ग) से आगे सब्जी मण्डी और सराफा मार्ग जिस तिराहे पर मिलते हैं वहाँ यह मन्दिर है। गर्भगृह और मन्दिर का शिखर सङ्गमरमर का है। इसका द्वार तथा भीतर का किवाड़ चाँदी की चौखट में जड़े हुए हैं।

सिंहासन पर श्रीगोपाल कृष्ण की श्याममूर्ति और उनकी दाहिनी ओर शङ्कर तथा बायीं ओर राधिकाजी की गौर वर्ण की मूर्तियाँ हैं। श्रीगोपाल-कृष्ण के चिबुक में हीरा रत्न है। इनकी नित्य-नैमित्तिक पूजा, अर्चा, आभूषण, पोशाक, राजभोग बालभोग आदि की व्यवस्था सिंधिया ट्रस्ट द्वारा की जाती है। मन्दिर में नित्य पुराण गायन और प्रति एकादशी को कीर्तन का आयोजन होता है। जन्मोत्सव, गोवर्धनोत्सव अर्थात् अन्नकूट आदि विशेष दर्शनीय समारोह होते हैं। यह मन्दिर दौलतराव सिंधिया की महारानी बाईजाबाई के द्वारा निर्मित है। मन्दिर के सामने सुन्दर नवनिर्मित कुछ भवन हैं। एक सुन्दर बगीचे में स्व० माधवराव सिंधिया की छत्री बनी है। पास ही छत्री चौक, खड़े हनुमान, सराफा और सती दरवाजा स्थित है।

वेधशाला यन्त्रमहल

वेधशाला उज्जैन के दक्षिण में क्षिप्रा तट पर ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व का स्थल है। यह हरसिद्धि मार्ग से १.५ किलोमीटर दूर है। उज्जैन भारतीय ज्योतिष का मुख्य केन्द्र रहा है। लगभग २६० वर्ष पूर्व राजा जयसिंह ने यहाँ एक यन्त्रमहल बनवाया था। उनकी इच्छा थी कि भारतीय ज्योतिष में ग्रहों का गणित यथार्थ हुआ करे। इस कारण उन्होंने उज्जैन के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर ग्रहों के वेध लेने वास्ते जयपुर, काशी, दिल्ली तथा मथुरा में भी वेधशालाएँ बनवायी। उज्जैन की वेधशाला में प्रमुख चार यन्त्र हैं–१. सम्राट् यन्त्र, २. नाड़ीबलय यन्त्र, ३. दिगंश यन्त्र, ४. भित्ति यन्त्र। इन चारों यन्त्रों द्वारा प्राप्त होने वाले काल, क्रान्ति दिगंश आदि के ज्ञान की सूक्ष्मता को देखने पर लोग आश्चर्य चकित हो जाते हैं। ज्योतिष का व्यवहारोपयोगी सामान्य ज्ञान सम्पादन के लिए यह यन्त्र पर्याप्त है।

भर्तृहरि गुफा

कालिका मन्दिर के निकट ही क्षिप्रा तट के ऊपरी भाग में भर्तृहरि की प्रसिद्ध गुफा है। भर्तृहरि ने अपने भाई विक्रमादित्य को राज्य देकर वैराग्य धारण कर नाथ सम्प्रदाय की दीक्षा ग्रहण की थी। इस गुफा में उन्होंने योग-साधना की थी। एक स्थान पर भर्तृहरि की धुनी के ऊपर की छत का एक पत्थर टूटा हुआ है। कहते हैं कि भर्तृहरि ने अपने योगबल से उसे गिरने से बचा लिया था। दूसरे स्थान पर काशी जाने का मार्ग बताते हैं जो बन्द है। पास में एक स्थान पर एक छोटा-सा चतुष्कोण पत्थर खड़ा है जिस पर दो छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं। एक को भर्तृहरि और दूसरी को गोपीचन्द की संज्ञा

दी जाती है। प्रथम गुफा में एक शिवालय है। जिसमें पातालेश्वर विराजमान हैं। पास में श्रीमत्स्येन्द्र-नाथ का स्मारक है।

पिशाचमोचन तीर्थ के बाद व्रतपालक नियम-परायण पुरुष गन्धर्वतीर्थ की यात्रा करे और उसमें स्नान करके पवित्र हो एकाग्रचित्त से पितरों का श्राद्ध करे। पुन: केदार नामक तीर्थ में जाय। वहाँ से चक्रतीर्थ में जाकर स्नान करके मनुष्य भगवान् चक्रपाणि की भली-भाँति पूजा करे। ऐसा करने से वह विष्णुलोक में पूजित होता है। इसी प्रकार व्रतपालक पुरुष सोमतीर्थ, देवप्रयाग तीर्थ, वेणी-तीर्थ, कपिलतीर्थ, घृतकुल्यातीर्थ, मधुकुल्यातीर्थ, उसरमहातीर्थ, नरादित्यतीर्थ, केशवार्कतीर्थ, काल-भैरवतीर्थ, दशाश्वमेधतीर्थ, धर्मसरोवरतीर्थ, विष्णु-पदतीर्थ, शक्तिभेदनीतीर्थ, पापमोचनतीर्थ, प्रेतशीला, नवनदी सङ्गम, मन्दाकिनी, पिताब्रह्मतीर्थादि में जाकर स्नान कर उन-उन स्थानों के देवों का दर्शन कर पुण्यार्जन करे। इस प्रकार जो अवन्ती की यात्रा करता है, उसे अवन्तीतीर्थ में निवास करने का फल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है। वह इस लोक में नाना प्रकार के धन-सम्पत्ति आदि का सुख भोगकर सब पापों से शुद्धचित्त हो मृत्यु के पश्चात् उत्तम लोक का अधिकारी बनता है।

क्षिप्रा [शिप्रा] ज्वरघ्नी कैसे ?

इस पृथ्वी पर शिप्रा नदी के समान दूसरी कोई नदी नहीं है। जिसके तट के दर्शन करने मात्र से मुक्ति हो जाती है, फिर दीर्घकाल तक सेवन करने से तो कहना ही क्या है। वैकुण्ठ में इसका नाम 'शिप्रा' है, देवलोक में यह 'ज्वरघ्नी' कहलाती है, यमद्वार में 'पापघ्नी' के नाम से यह प्रसिद्ध है, पाताल में इसे 'अमृतसम्भवा' कहते हैं और वाराहकल्प में इसका नाम 'विष्णुदेहा' कहा गया है। अवन्तीपुरी में भी 'शिप्रा' नाम से ही इसकी ख्याति है। यह नदी साक्षात् भगवान् विष्णु के हृदय से प्रकट हुई है। वैकुण्ठलोक से उत्पन्न होकर शिप्रा नदी तीनों लोकों में विख्यात हुई है। शिप्रा का नाम ज्वरघ्नी क्यों हुआ, अब यह बतलाया जा रहा है। अनिरुद्ध से अपमानित होकर दैत्यराज बाणासुर ने जब भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अपनी सहस्त्रों भुजाओं में नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध किया, तब वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण ने क्षुरप्र नामक शीघ्रगामी बाण के द्वारा शीघ्रतापूर्वक उसकी सहस्त्र भुजाओं को काट डाला (केवल दो भुजाएँ शेष छोड़ दी)। भुजाएँ कट जाने से बाणासुर का उत्साह भङ्ग हो गया। वह उस युद्ध से पीड़ित हो शङ्करजी की शरण में गया। अपने समीप आये हुए भयविह्वल बाणासुर को देखकर शिवजी को बड़ी दया आयी। वे, युद्ध में जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अविचल भाव से खड़े थे, वहाँ गये और बाणों की वर्षा करते हुए उन्होंने श्रीकृष्ण को आगे बढ़ने से रोका। फिर तो दोनों में बड़ा भयङ्कर संग्राम छिड़ गया। शिव ने माहेश्वर ज्वर को प्रकट किया। यह देख श्रीकृष्ण ने भी वैष्णव ज्वर की सृष्टि की। फिर वे दोनों ज्वर एक-दूसरे से भयङ्कर युद्ध करने लगे। अन्त में माहेश्वर ज्वर भाग खड़ा हुआ। वह सब लोकों में घूमता फिरा; परन्तु कहीं भी उसे शान्ति नहीं मिली। अन्त में वह महाकाल वन में आया और वैष्णव ज्वर से पीड़ित हो शिप्रा नदी के जल में कूद पड़ा। इससे उसको बड़ी शान्ति मिली। माहेश्वर-ज्वर को शान्त हुआ देख वैष्णव ज्वर ने भी वहाँ पहुँचकर शिप्रा के जल में स्नान किया। उस जल के प्रभाव से भगवान् विष्णु और शिव दोनों के ही ज्वर शान्त हो विनष्ट हो गये। इसलिए शिप्रा नदी सब समय में ज्वर का तत्क्षण नाश करने वाली मानी गयी है। ज्वर से पीड़ित एवं परमदु:खित हुए जो मानव एकाग्रचित्त हो शिप्रा में गोता लगाते और उसके तट पर निवास करते हैं, उन्हें ज्वरजनित पीड़ा कभी कष्ट नहीं देती है।

श्रीमत्स्येन्द्रनाथ

भर्तृहरि गुफा के सामने क्षिप्रा नदी के सामने

वाले किनारे पर नाथसम्प्राय के आचार्य मत्स्येन्द्र नाथ का स्मारक है। उज्जैन जाने पर यात्रिगण इसका भी दर्शन करते हैं।

श्रीविक्रमादित्य

राजा विक्रमादित्य ने २०५० वर्ष पूर्व उज्जैन में शासन किया था। इनका चलाया हुआ विक्रम संवत् आज भी प्रचलित है। इनके दरबार में नौ रत्न थे, ऐसी मान्यता है।

विक्रमविश्वविद्यालय

नगर में विक्रमविश्वविद्यालय परिसर भी एक दर्शनीय परिक्षेत्र के रूप में अब सामने आने लगा है। इस परिक्षेत्र में विक्रम विश्वविद्यालय कार्यालय के अतिरिक्त विश्वविद्यालय के अध्ययन केन्द्र, प्राणिकी वनस्पति विभाग, भौतिकी, रसायन, भौमिकी, गणित, सांख्यकी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृत एवं पुरातत्व, हिन्दी, अंग्रेजी, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, पुस्तकालय विज्ञान आदि दर्शनीय अध्ययन शालाएँ हैं।

श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर

महाकालेश्वर का प्राचीन मन्दिर बड़ा भव्य था। महाकवि कालिदास ने उसके वैभव का वर्णन किया है। प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार परमार राजाओं ने करवाया था; परन्तु इस नये मन्दिर को मुस्लिम सुल्तानों ने तोड़ दिया। अभी भी महाकाल मन्दिर है उसे राणाजी शिंदे के मन्त्री रामचन्द्र बाबा शेणवीं ने आज से लगभग २५० वर्ष पहले बनवाया था। देश-विदेश के हिन्दू, महाकाल का दर्शन करने आते हैं। यह मन्दिर तीन खण्डों वाला है। सबसे नीचे खण्ड में महाकालेश्वर आसीन हैं। उसके ऊपर के खण्ड में ओङ्कारेश्वर हैं और सबसे ऊपर के तीसरे खण्ड में नागचन्द्रेश्वर हैं जिनके दर्शन केवल नागपञ्चमी को होते हैं। महाकाल के आस-पास बहुत से दूसरे भी शिव मन्दिर हैं। जिनमें वृद्धमहाकालेश्वर का मन्दिर सबसे अधिक दर्शनीय है। महाकाल मन्दिर से लगा हुआ एक विशाल कुण्ड है। इसे कोटितीर्थ कहते हैं। सिंहस्थ पर्व महाशिवरात्रि, सोमवती अमावस्या, श्रावणी सोमवारों को यहाँ दर्शनार्थियों का ताँता लग जाता है। श्रावण सोमवारों को महाकालेश्वर की सवारी बड़ी धूम-धाम से निकलती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसकी चर्चा की गयी है। वैसे वैष्णवों को इससे कोई प्रयोजन नहीं है।

श्रीमङ्गलनाथ मन्दिर

अवन्तिका को मङ्गलग्रह की जन्मभूमि कहा जाता है। क्षिप्रा तट पर अङ्कपात से आगे गंगाघाट व आयुर्वेद महाविद्यालय से थोड़ा आगे मङ्गलनाथ का मन्दिर स्थित है। मन्दिर से नीचे ८४ सीढियाँ उतरने पर दर्शनीय घाट है। मन्दिर में मङ्गलेश्वर विराजमान हैं। प्रति मङ्गलवार व सोमवती अमावस्या तथा बैशाख पूर्णिमा के अवसर पर दर्शनार्थियों का मेला लगा रहता है। यह स्थान खगोल एवं ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

श्रीसिद्धिनाथ मन्दिर

भैरवगढ़ कालभैरव के समीप प्राचीन बस्ती है यहाँ कभी अशोक का बन्दीगृह रहा था। सिद्धनाथ यहीं स्थित हैं। भारत में वटवृक्ष की महिमा श्रद्धा से गाई जाती है। प्रयाग का अक्षयवट, गया का गयावाट, वृन्दावन का वंशीवट तथा नासिक का पञ्चवटी उसी प्रकार प्रसिद्ध हैं। जिस प्रकार अवन्तिका में सिद्धवट है जिसकी महिमा सर्वविदित है। क्षिप्रा तट पर भैरवगढ़ में पक्के घाटों के ऊपर यह पवित्र वटवृक्ष विद्यमान है। श्राद्ध एवं तर्पण कर्म के लिए यह स्थान पवित्र माना जाता है। यह पापमोचन तीर्थ कहलाता है। यहाँ वैशाख शुक्ल चतुर्दशी और वैकुण्ठ चतुर्दशी को भी मेला लगता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक अवश्य धारण करें

रक्षार्थमघनाशार्थं मङ्गलार्थं च भामिनि ।
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रस्तु शिरसाहर्निशं सदा ।।

(वामनपुराण)

अनादि सृष्टि परम्परा में चौरासी लाख शरीरों के धारण परित्याग स्वरूप जन्म-मृत्यु तथा उससे जन्य क्षुत्, पिपासादि विविध व्याधिस्वरूप दु:ख-दावानल से सन्त्रस्त जीवों पर कृपासिन्धु परात्परब्रह्म श्रीमन्नारायण की विशेष अनुकम्पा का परिणाम ही मानववपु प्राप्त होने में हेतु है। इसमें समस्त शास्त्रों एवं सन्तों का मतैक्य है। प्रभु-प्रसाद का ही अमृतोपम फल ईश्वर विमुख जीवों का समस्त साधनों से समन्वित हो ईश्वरोन्मुख होना है। इनकी अतिशय प्रसन्नता के परिणाम-स्वरूप प्राप्त मानव शरीर का एक मात्र उद्देश्य संसार सागर समुत्तरण पूर्वक प्रभु-पद प्राप्ति है। एतदर्थ ही ईश्वर-सङ्कल्प से जीवों को मानव शरीररूप नौका सद्गुरु-स्वरूप कर्णधार तथा इनमें मञ्जिल के प्रति द्रुतगति हेतु प्रभु-प्रसाद रूप पवन की प्राप्ति होती है। अन्यथा सांसारिक विषयों के संयोग-वियोग से जन्य हर्ष-विषाद की अनुभूति तो अन्य शरीरधारी जीवों को भी उतनी ही होती है, जितनी मानव शरीर धारियों को। अत एव वेद तथा तन्मूलक समस्त शास्त्र संसार-सागर से समुद्धार के उपायभूत ज्ञान, कर्म, भक्ति तथा प्रपत्ति: इन उपायों के वर्णन से ओत-प्रोत हैं। यद्यपि ये सभी ईश्वर प्राप्ति में समान रूप से कारण हैं तथापि सुलभता और दुर्लभता की दृष्टि से विचार करने पर भक्तिपथ का समाश्रयण ही सामान्य जीवों के लिए ज्यादा उपादेय है।

ध्यातव्य है कि किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु मनुष्य योग्यतानुसार ही उपायों का अवलम्बन कर सकता है अन्यथा वह लक्ष्य से दूर तो रहेगा ही महान् अनिष्ट का भाजन भी बनेगा। अत: उपायों के अबलम्बन से पूर्व कुछ संस्कारों का आधान करना आवश्यक होता है और वे संस्कार ही उपासकों की योग्यता के रूप में आते हैं। भक्तिपथ के समाश्रयण हेतु भी भक्त साधक को अपने में योग्यता का आधान करना होगा; क्योंकि **'देवोभूत्वा देवंयजेत्'** के अनुसार उपासक उपास्य के सारूप्य को प्राप्त करने पर ही उपासना हेतु अधिकृत होता है।

भक्तिपथ के पथिकों को ऐसी आस्था है कि निर्हेतुकी कृपा से अनुगृहित जीवों के समुद्धारार्थ ईश्वर ही गुरुरूप में अवतीर्ण हो स्वेच्छा स्वरूप अन्त:प्रेरणा से मानव वपुधारी जीवों को आत्मसमर्पित (ईश्वर शरणागत) करवाकर उनमें परमार्थ पथ के पाथेयभूत पञ्चसंस्कारों के आधान द्वारा उपासना के लिए अधिकृत करते हैं। जिसे दीक्षा भी कहते हैं। इसके द्वारा साधक भावदेह से आराध्य का वरण कर उनकी दिव्य-लीला के विभिन्न अंगों से परिचित हो कैङ्कर्य (उपास्य सेवा) की योग्यता सम्पादित करता है। इस योग्यता के बाह्य तथा आभ्यन्तर दो रूप होते हैं। जैसे-गन्दे पात्र का स्वच्छ एवं पवित्र गंगाजल तथा स्वच्छ एवं पवित्र पात्र का अपवित्र गंगाजल, इन दोनों ही परिस्थितियों में जल अग्राह्य होता है। जल की ग्राह्यता के लिए पात्र एवं जल दोनों की स्वच्छता परमापेक्षित है, वैसे ही आराध्य की आराधना के अधिकार की प्राप्ति हेतु बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों ही दृष्टि से संस्कृत होना नितान्त अपेक्षित है। **'ताप: पुण्ड्र तथा नाम मन्त्रो यागस्तु पञ्चम:'** के अनुसार बाहुमूलों में शङ्खचक्राङ्कण उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण, भागवत् (उपास्य) भागवत परक नामकरण, अष्टाक्षर-द्वय-चरम मन्त्रों का उपदेश तथा ईश्वर के चरणों में सर्वतोभावेन समर्पण ये पञ्चसंस्कार बाह्य हैं और सांसारिक विषयों से वैराग्य एवम् उपास्य के चरणों में अनुरागादि आभ्यन्तर

संस्कार कहे जाते हैं। इन दोनों में किसी के अभाव में अराध्य की आराधन-योग्यता साधक में नहीं आ सकती। अर्थात् यह जीव परमात्मा का प्रिय पात्र तभी बन पायेगा, जब वह बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों दृष्टि से संस्कृत होगा। अत एव श्री वैष्णवाचार्य शराणागत भक्तों को उक्त पञ्चसंस्कारों से संस्कृत कर भक्ति के अधिकार द्वारा भक्त और भगवान् के बीच पुरुषकार (मध्यस्थ) बनते हैं।

यद्यपि पञ्च-संस्कारों के परिगणना-क्रम में प्रथम स्थानापन्न शङ्ख-चक्र का मुद्राङ्कण है तथापि मैं उस पर कोई विचार न कर द्वितीय स्थानापन्न संस्कार उर्ध्वपुण्ड्रतिलक धारण को ही अपने लेख का प्रधान प्रतिपाद्य विषय बना रहा हूँ।

ऊपर बताया गया है कि मानव-जीवन की सफलता परमानन्द की प्राप्ति में है और उसकी उपलब्धि में उपासना परमावश्यक है; क्योंकि उपासना के बिना ईश्वर की प्रियता प्राप्त नहीं होती। उपासना का अर्थ है भक्ति। जिसका नारद संहिता के अनुसार ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक धारण एक प्रधान अंग है—**'अर्चनाङ्ग ब्रवीत्यन्या तथा श्रुतिः'**।

पद्मपुराण में भी—

आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शङ्ख चक्राङ्कणं हरेः।
धारणं चोर्ध्वपुण्ड्राणां तन्मन्त्राणां परिग्रहः।।

इत्यादि के द्वारा परिगणित सोलह प्रकार की भक्ति में भी ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक धारण का एक महत्वपूर्ण स्थान है।

अथर्ववेद के अनुसार लक्ष्मीपति श्रीमन्नारायण के दोनों चरणारविन्दों के समान मध्य में छिद्र छोड़कर जो ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक लगाता है वह परमात्मा का प्रिय पुण्यवान् और मुक्ति भाजन बनता है।

'हरेः पादाकृतिमात्मनो हितं मध्ये। छिद्रमूर्ध्व-पुण्ड्रं यो धारयति स पुण्यवान् भवति स मुक्ति भाग्भवति।।'' यह आध्यात्मिक दृष्टि से जितना आवश्यक है व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टि से उतना ही महत्वपूर्ण भी। उपास्यदेव श्रीलक्ष्मीनाथ भगवान् श्रीमन्नारायण के दोनों चरणाविन्दों की आकृति तथा उनके बीच में दोनों ओर से रिक्त स्थान छोड़कर श्रीरेखा को भृकुटि तथा ललाट के मध्य भाग में धारण करते हैं और उसी के सटे निम्न भाग में भृकुटि के नीचे नासिका पर एक आसन देते हैं, किन्तु पहले आसन तत्पश्चात् उपास्य की पादाकृति और अन्त में श्रीरेखा धारण करते हैं।

पूर्वं सिंहासनं कुर्युः ततः पार्श्वद्वयं पुनः।
ततः पश्चाच्च तन्मध्ये लिखेयुः सुन्दरी श्रियम्।।
(वाल्मीकि संहिता अ.४)

ललाट और नासिका प्रदेश में लगा उक्त चिह्न ही ऊर्ध्वपुण्ड्र शब्द से अभिहित होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह दिव्य दम्पति श्रीलक्ष्मी नारायण का प्रतीक है; क्योंकि स्वयं भगवत्पाद का वचन है—

पुण्ड्ररूपेण मां विद्धि रेखारूपेण वैश्रियम्।
संधारयन्ति ये भाले बाहुवक्षस्थलादिषु।।
(वृहद्ब्रह्म संहिता)

अर्थात् पुण्ड्र के रूप में मुझे तथा श्रीरेखा के रूप में लक्ष्मी को, ललाट बाहु, वक्षस्थलादि पर जो धारण करते हैं वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। इसके धारण किए बिना यज्ञ, दान, तप, होम, स्वाध्याय, तर्पण, इत्यादि नित्य, नैमित्तिक, काम्य, लौकिक तथा वैदिक समस्त धार्मिक एवम् आध्यात्मिक क्रिया-कलाप निष्फल हो जाते हैं। यहाँ तक की ऊर्ध्वपुण्ड्र से रहित शरीर श्मशान की तरह अस्पृश्य एवम् अदर्शनीय है।

यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं बिना कृतम्।।
यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्।
तन्मुखं नैव पश्यामि श्मशानसदृशं हि तत्।।
(स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड)

मस्तक सहित शरीर के बारह अंगों में इसके धारण करने का तात्पर्य सम्पूर्ण शरीर को उपास्य के चिह्नों से प्रकाशित कर उसे उनका भोग्य बनाना (कैङ्कर्य की स्वरूप योग्यता प्रदान करना) है। इससे उपास्य की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

हमारे ज्ञान तन्तुओं का विचारक केन्द्र भृकुटि और ललाट का मध्य भाग है। किसी गहन विषय पर अधिक विचार करने से इस केन्द्र में वेदना की अनुभूति होती है, यह आपामर-विद्वान् विदित है। हमारा यह विचारक केन्द्र मस्तिष्क जितना शुद्ध एवं स्वस्थ रहेगा हमारा तात्त्विक परिशीलन उत्तना ही वास्तविक एवं महत्त्वपूर्ण होगा। अत: मन्त्रद्रष्टा महर्षि मनीषियों ने उसी ज्ञान तन्तु के केन्द्रस्थल में शीतलता प्रदान करने हेतु ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण का वैदिक आचरण स्वयं किया तथा हमें भी धारण करने का निर्देश दिया है, जिससे उसकी शक्ति अक्षुण्ण बनी रहे। यह हमारी ऊर्ध्व गति का सङ्केत चिह्न भी है जिसका सतत धारण हमें अपने क्रिया-कलापों से ऊपर उठने का सङ्केतक है।

ऊर्ध्वगत्यां तु यस्यच्छा तस्योर्ध्वं पुण्ड्रमुच्यते ।
ऊर्ध्वगत्यां तु देवत्वं स प्राप्नोति न संशयः ।।

(बाधूल-स्मृति)

व्यावहारिक दृष्टि से यह आध्यात्मिक रहस्यों का प्रतिपादक सङ्केत चिह्न है। जैसे मानव समाज की अन्य सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इकाइयों के उनके सैद्धान्तिक भावों के प्रकाशक झण्डा आदि कोई विशेष चिह्न होते हैं, वैसे ही मनुष्य समाज की आध्यात्मिक इकाई श्रीमन्नारायण श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि की भक्ति परम्परा के सैद्धान्तिक भावों का प्रकाशक चिह्न ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक है।

तिलक-धारण के लिए मलयगिरि चन्दन, गोपी चन्दन, वेलमूल, भस्म तथा श्वेत, श्याम या पीत मृतिका शास्त्र विहित है, किन्तु तीर्थों की पवित्र मृतिका को स्वच्छ करके जो चन्दन तैयार किया जाता है वह सात्विक तथा पूर्वोक्त शैत्य आदि अनेक वैज्ञानिक लाभों से परिपूर्ण है।

'शुद्ध मृत्तिका में सर्वविध सङ्क्रामक कीटाणुओं के विनाश की अद्भुत शक्ति है; इसे सभी भौतिक विज्ञानवादी स्वीकार करते हैं। तीर्थों की मृत्तिका में पवित्रता भी अवश्य रहती है। अत एव अपने मस्तिष्क को पवित्र करने के लिए भी श्वेत मृत्तिका का तिलक लगाते हैं। इसीलिए 'ऊर्ध्वपुण्ड्र' मृदाधार्यम् यह कहकर श्वेत मृत्तिका की प्राथमिकता दी गई है और श्रीरेखा के लिए नीबू रस तथा सुहागा समन्वित हरिद्राचूर्ण ये दोनों ही उपर्युक्त दृष्टि से परम उपादेय हैं। आयुर्विज्ञान के अनुसार हल्दी में संयोजन तथा त्वचा शोधन की अद्वितीय क्षमता है। अत: त्वचा को शुद्ध तथा मस्तिष्क के स्नायुओं को संयोजित करने के लिए मध्य में हल्दी चूर्ण धारण करने का विधान है।

यों तो चारों वर्णों के लिए अलग-अलग द्रव्यों से विभिन्न प्रकार के तिलक धारण का विधान शास्त्रों में मिलता है। जैसे ब्राह्मण को श्वेत, श्याम या पीतमृत्तिका से ऊर्ध्वपुण्ड्र, क्षत्रिय को मलयगिरि, गोपीचन्दन से अर्धचन्द्राकार, वैश्य को वेलमूल से वर्तुलाकार और शूद्र को भस्म से त्रिपुण्ड्र तिलक धारण का विधान मिलता है। किन्तु—

सर्वजातिषु यो मर्त्यो विष्णुभक्तो भवेन्मुने ।
तस्योर्ध्वपुण्ड्रकरणे अधिकारो बुधैस्मृतः ।।

(नारदीय)

ऊर्ध्वपुण्ड्र ऋजुः सौम्यो ललाटे यस्य दृश्यते ।
चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः ।।

(ब्रह्माण्डे)

इन प्रमाणों के आधार पर किसी वर्ण का व्यक्ति यदि विष्णु भक्त हो तो उसे ऊर्ध्वपुण्ड्र ही धारण करना चाहिए। यह किसी के लिए निषिद्ध नहीं है, अत: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन

चारों वर्णों के लोग ईश्वर साजुज्य प्राप्ति के लिए प्रणव मन्त्र (ॐ) से भगवान् विष्णु का स्मरण करते हुए।

ॐ उद्धताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
आरुह्य मम गात्राणि सर्वपापहरो भव।।

इस मन्त्र से ललाटादि द्वादश स्थानों पर प्रतिदिन ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक धारण करे।

जो लोग कुछ नास्तिकों के हँसने पर तिलक लगाना छोड़ देते हैं या हँसने के भय से तिलक लगाते ही नहीं इसमें लज्जा का अनुभव करते हैं, उनसे राष्ट्र या समाज की रक्षा की सम्भावना भी नहीं की जा सकती; क्योंकि किसी के हँसने या लज्जा वश जब ये वेद विहित स्वधर्म की रक्षा नहीं कर सकते तो उनसे राष्ट्र, समाज और परिवार की उम्मीद कैसे की जा सकती है? लज्जा या भय तो वेद निषिद्ध कर्मों के अनुष्ठान में होना चाहिए, किन्तु उन वेद-निषिद्ध जघन्य कर्मों को करने में ऐसे लोग भय और लज्जा का अनुभव ही नहीं करते हैं। अतः राष्ट्र समाज, परिवार या अपना हित चाहने वाले लोगों का कर्त्तव्य होता है कि वे जिस तरह अन्य शास्त्र विहित जीवनोपयोगी वस्तुओं के सङ्ग्रह हेतु विभिन्न कर्मों का सम्पादन करते हैं उसी तरह अपनी आध्यात्मिक सम्पदा को बढ़ाते हुए भगवान् श्रीमन्नारायण के सायुज्य प्राप्ति के लिए ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक धारण भी भय, लज्जा तथा सङ्कोच से ऊपर उठकर अवश्य करें।

परमात्मा के पास पहुँचने के लिए दीक्षित अवश्य हों

जगत् में सृष्टि के आरम्भ से ही सुयोग्य आचार्य से दीक्षा ग्रहण करने की शास्त्रीय परम्परा चली आ रही है। उत्तम ज्ञान प्राप्त कर सदा के लिए पाप बन्धन को क्षीण कर देना दीक्षा है।

दीयते ज्ञानमत्यर्थं क्षीयते पापबन्धनात्।
अतो दीक्षेति देवेशि कथिताः तत्त्वचिन्तकैः।।

दीक्षा विहीन व्यक्ति को न लोक में सिद्धि मिलती है और न ही दिव्यलोक वैकुण्ठ ही प्राप्त होता है। अतः विचारशील पुरुष यत्नपूर्वक सुयोग्य गुरु से दीक्षा ग्रहण कर ले। जो अच्छे गुरु से दीक्षा ग्रहण नहीं करता है, उसका जन्म पशु के समान ऋषियों ने माना है।

जैसे स्वामी विहीन व्यक्ति की रक्षा संसार में कोई नहीं करता है, उसी प्रकार दीक्षा विहीन व्यक्ति की रक्षा कोई देव नहीं करते हैं। दीक्षा विहीन मानव वैदिक संविधान के अनुसार महान् अपराधी माना गया है। वह मृत्यु के बाद घोर अन्धकारमय नरक में जाता है। श्रीमद्भागवत ११.४.४८ में कहा गया है कि कल्याण चाहने वाला व्यक्ति प्रथम सुयोग्य आचार्य से ही दीक्षा ग्रहण करे। तदनन्तर उनके द्वारा पूजा की विधि समझे। फिर भगवान की जो मूर्ति प्रिय लगे उनका पूजन करे।

लब्धानुग्रह आचार्यात् तेन सन्दर्शितागमः।
महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयाऽऽत्मनः ।।

मानसकार गोस्वामी तुलसीदास ने अपने मानस ग्रन्थ में राम नाम की बहुत महिमा लिखी है, उन्होंने कहा है—

जासु नाम सुमिरत एक बारा।
उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।।
भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ।
नाम जपत मङ्गल दिसि दसहुँ।।

परन्तु उन्होंने उत्तर काण्ड में यह स्पष्ट कर दिया है कि गुरु दीक्षा के बिना राम-नाम से भी मुक्ति नहीं हो सकती। गुरु मन्त्र लेकर ही नाम

जपने से सिद्धि मिलती है।

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई।
जौं विरंचि सङ्कर सम होई।।

ब्रह्मा और शङ्कर के समान शक्तिशाली होने पर भी बिना गुरु से दीक्षा ग्रहण किये भवसागर को पार नहीं कर सकता। अर्थात् सदा के लिए दुःख से छुटकर परमानन्द को प्राप्त करने के लिए गुरु से संस्कारपूर्वक मन्त्र ग्रहण करना आवश्यक है। गुरु से ग्रहीत मन्त्र विशेष शक्तिशाली होता है। उसी मन्त्र में ब्रह्म तक पहुँचने की शक्ति होती है। पुस्तक में छपे मन्त्रों में से किसी को याद कर जप करने से सिद्धि मिलने की आशा नहीं रहती है।

पद्मपुराण उत्तरखण्ड के २२३वाँ अध्याय के अनुसार ब्रह्मा ने नारायण से कहा कि आप सब देवों में महान् हैं। आप जगत् के स्त्रष्टा, पालक, संहारक और मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। आप सम्पूर्ण जगत् के आधार तथा सर्वान्तर्यामी हैं। आप कृपाकर यह उपदेश करें कि सब मन्त्रों में श्रेष्ठ कौन मन्त्र है? भगवान् ने कहा—

सर्वेषामेवमन्त्राणां मन्त्र रत्नं शुभावहम्।
सकृत्स्मरण मात्रेण ददाति परमं पदम्।।

अर्थात् सभी मन्त्रों में रत्न द्वय मन्त्र है। जिसे प्राप्त होने पर मैं मनुष्यों को मुक्ति देता हूँ।

'श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये'।
'श्रीमते नारायणाय नमः'।

इसे द्वय मन्त्र कहते हैं, यह सभी मन्त्रों में श्रेष्ठ होने के कारण मन्त्र रत्न माना गया है। यह शरणागति मन्त्र है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्रियाँ–ये सभी इस मन्त्र के अधिकारी हैं।

भगवान् ने ब्रह्मा से यह भी कहा कि मन्त्र ग्रहण काल में पाँच संस्कार होते हैं, जिनमें प्रथम संस्कार है चक्र-शङ्ख-धारण करना दाहिनी भुजा में आचार्य द्वारा तप्त चक्र और बायीं भुजा में शङ्ख धारण करें। तदनन्तर मन्त्र का उपदेश प्राप्त करे। इस विधि से दीक्षित होने पर मेरा विशेष प्रिय वैष्णव भक्त होता है। ब्रह्मा ने भगवान् नारायण से स्वयं वैष्णव होने की इच्छा व्यक्त किया। भगवान् ने ब्रह्मा को चक्र और शङ्ख से भुजाओं को अङ्कित कर मन्त्र रत्न का उपदेश किया—

एवमुक्त्वा विधातारं देवदेवो हरिः पिता।
स्वचक्रेणऽङ्कयित्वा तु तस्मै मन्त्रं ददौ स्वयम्।।

ब्रह्मा ने अपने पुत्र नारद को चक्राङ्कित कर मन्त्र रत्न का उपदेश किया। नारद जी से शौनकादि ऋषियों ने वैष्णवी दीक्षा ग्रहण की। इसलिए दण्डकारण्य में वास करने वाले अठ्ठासी हजार ऋषिगण श्रीवैष्णव थे। आज भी श्रीसत्यनारायणव्रत कथा पुस्तक में यह बात आती है कि सूतजी ने शौनकादि ऋषियों को वैष्णवों में श्रेष्ठ कहा है—**'धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ त्वमेव वैष्णवोऽग्रणीः'।** सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी समस्त राजागण श्रीवैष्णवी दीक्षा ग्रहण किये हुए थे।

प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुकदेव, शौनक, भीष्म, रुक्माङ्गद, अर्जुन, वसिष्ठ, विभीषण आदि के नाम भागवत में आता है। भागवत वे ही होते हैं जिन्हें अर्थपञ्चक का ज्ञान हो, जो शङ्खचक्रादि से अङ्कित होकर मन्त्र-रत्न के उपदेश ग्रहण करते हैं और जिन्हें भगवान् में पूर्ण प्रेम हो—

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक
व्यासाम्बरीष शुकशौनक भीष्मदालभ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुन वसिष्ठ विभीषणादि
पुण्यानिमान् परमभागवतान् स्मरामि।।

गुरु कैसे हों ?

भगवान् नारायण से प्रवर्तित वैदिक सम्प्रदाय परम्परा में दीक्षित, वेद-वेदान्त को जानने वाले, परमात्मा के चरणों में प्रेम करने वाले, विशुद्ध आचरण वाले, सात्त्विक वृत्ति वाले, सत्य बोलने

वाले, दम्भ एवं असूया से रहित, जितेन्द्रिय परम-दयालु, शिष्य का सदा कल्याण चाहने वाले तथा शिष्य को सदा सन्मार्ग पर ले चलने वाले आचार्य ही गुरु के योग्य हैं। गुरु में दो अक्षर हैं–गु और रु, गु का अर्थ है–अज्ञान रूप अन्धकार और रु का अर्थ है–अज्ञान रूप अन्धाकार को दूर करने वाला। सांसारिक विषय भागों में आसक्त जीव को नारायण के चरणों में लगा देने वाले वास्तविक गुरु होते हैं। दीक्षा गुरु के ऊपर विशेष उत्तरदायित्व होता है। वे लोक से परलोक तक शिष्य पर कृपा रखते हैं।

इसीलिए श्रीवेदान्ताचार्य ने परमात्मा और गुरु में आठ गुणों का साम्य कहा है—(१) अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले। (२) पापों को नाश करने वाले भगवान् और आचार्य दोनों हैं। (३) जैसे भगवान् अपने आश्रित जीवों को मुक्त होने पर अपने समान बना लेते हैं, वैसे गुरु भी अपने शिष्य को ज्ञान, वैराग्य और भगवद् भक्ति में अपने समान बना लेते हैं। (४) भगवान् जीवों को मोक्षरूपी जन्म से सांसारिक जन्म को नष्ट कर देते हैं। आचार्य भी शिष्य में विद्या उत्पन्न कर सांसारिक जन्म को नष्ट कर देते हैं। (५) जैसे भगवान् शिष्य को दिव्य-ज्ञान देते हैं। (६) जीव भगवत्कृपा और आचार्य कृपा दोनों से विघ्न रहित हो जाता है। (७) जैसे भक्तों के लिए भगवान् अत्यन्त प्रिय होते हैं, वैसे ही आचार्य भी शिष्य के लिए अत्यन्त प्रिय होते हैं। (८) जैसे जीव इस लोक में रहे या वैकुण्ठ में दोनों जगह भगवान् जीवों के स्वामी ही रहते हैं, वैसे ही शिष्य संसार में रहे अथवा वैकुण्ठ में दोनों जगह आचार्य उसके स्वामी रहते हैं। इस प्रकार भगवान् और आचार्य (गुरु में आठ गुणों के साम्य होने से आचार्य भगवान् के समान उपास्य होते हैं। आचार्य ब्रह्म नहीं होते हैं, किन्तु ब्रह्म के समान होते हैं।

जो गुरु अपने को ब्रह्म कहता हो वह गुरु होने योग्य नहीं है।

अज्ञानध्वान्तरोधादघपरिहरणादात्मसाम्यावहत्वाज्जन्मप्रध्वंसिजन्मप्रदगरिमतया दिव्यदृष्टिप्रभावात्। निष्प्रत्यूहानृशंस्यान्नियतरसतया नित्यशेषित्वयोगादाचार्यः सद्भिरप्रत्युपकरणधिया देववत् स्यादुपास्यः ।। (न्यासविंशति)

जैसे जन्मान्ध व्यक्ति का हाथ पकड़ कर नेत्र-विहीन व्यक्ति अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँच सकता तथा पत्थर की नाव पर चढ़कर कोई नदी पार नहीं हो सकता, वैसे ही नारायण के चरणों में प्रेम रहित तथा सांसारिक विषय भागों में आसक्त रहने वाला अज्ञानी पुरुष को गुरु बनाकर कोई भवसागर को पार नहीं हो सकता। वैसे ही गुरु के सम्बन्ध में कठोपनिषद् बतलाती है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रभ्यमाणाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमानायथान्धाः।।

अर्थात् जो अपने आपको ही बुद्धिमान् और विद्वान् समझते हैं। विद्या-बुद्धि के मिथ्या अभिमान में शास्त्र और महापुरुषों के वचनों की कुछ भी प्रवाह न करके उनकी अवहेलना करते हैं और प्रत्यक्ष सुख-रूप प्रतीत होने वाले भोगों में आसक्त होकर उनके उपार्जन में ही निरन्तर संलग्न रहने वाले गुरु अपने शिष्य को वैसे ही अभीष्ट स्थान पर नहीं पहुँचा सकता, जैसे अन्धे पुरुष को मार्ग दिखाने वाला अन्धा गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँचा सकता। गोस्वामी तुलसीदास का यह वक्तव्य उन्हीं गुरुओं के लिए है—

गुरु सिष बधिर अंध का लेखा।
एक न सुनइ एक नहिं देखा।।
हरई सिष्य धन सोक न हरई।
सो गुरु घोर नरक महुँ परई।।

अतः आत्मकल्याण चाहने वाला व्यक्ति सुयोग्य गुरु से दीक्षित होकर धर्माचरण करे। अधिकारी बनकर कर्म करने में सफलता मिलती है। अनाधिकारी के द्वारा किया गया शुभ कर्म भी पूर्ण सफल नहीं होता।

श्रीकुलशेखर-आलवार

श्रीवैष्णव परम्परा में बारह आलवार सन्त हुए हैं, उन आलवारों के चरित्र का कीर्तन करने से कलिकाल के दुष्प्रभाव से मनुष्य प्रभावित नहीं होता, ऐसी मान्यता है। अत: उन्हीं आलवारों में श्रीकुलशेखर-आलवार का दिव्य चरित्र का यहाँ चित्रण किया जा रहा है।

केरल प्रदेश में केलिपटन नाम से प्रसिद्ध एक नगरी थी। वहाँ दृढ़व्रत नाम से भगवद्भक्त धर्मात्मा क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। उन्हें सन्तान प्राप्ति की कामना हुई। जैसे त्रेता में राजा दशरथ ने पुत्र के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किया था, वैसे ही राजा दृढ़व्रत ने पुत्र के लिए भगवान् नारायण की उपासना की। उससे भगवान् प्रसन्न होकर राजा को एक पुत्र प्रदान किये, जो पराभव संवत्, माघमास, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि पुनर्वसु नक्षत्र में भगवान् के कौस्तुभ-मणि के अंश से प्रादुर्भूत हुआ। राजा दृढ़व्रत अत्यन्त तेजस्वी और सुन्दर पुत्र को देखकर आनन्द-मग्न हो गए। उन्होंने ब्राह्मणों को विशेष दान दिया। नामकरण के समय परम तेजस्वी बालक का नाम कुलशेखर रखा गया। उस बालक के उचित समय पर चौलादि संस्कार किए गए। श्रीकुलशेखरजी ने 'साक्षीमात्र' नाम के गुरु की सन्निधि में रहकर सभी विद्याओं का अध्ययन किया। महाराजा दृढ़व्रत अपने तेजस्वी पुत्र के अलौकिक प्रभाव को देखकर परम सन्तुष्ट हो गए और समस्त राज्य का कार्य उन्हें सौंपकर तप के लिए वन में चले गए।

श्रीकुलशेखरजी धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। वे समान भाव से प्रजा का पालन करते थे। उन्हें प्रजा के प्रति पुत्रवत् स्नेह रहता था। श्रीकुलशेखरजी वाल्यकाल से ही भगवान् श्रीराम के चरणों में नैसर्गिक प्रेम करते थे। उभय विभूति नायक भगवान् नारायण के आज्ञानुसार श्रीविष्वक्सेन स्वामी ने राजा कुलशेखरजी को श्रीवैष्णवी दीक्षा देकर समस्त सात्त्विक शास्त्रों का ज्ञान करा दिया। राजा वैष्णव संस्कार के अनुसार ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक धारण कर भगवान् श्रीराम की सेवा करते थे। उनकी सात्त्विक एवं निर्मल बुद्धि संसार-सागर से उद्धार के निमित्त चिन्तन करती रहती थी। श्रीकुल-शेखर स्वामी अपने को भगवान् का दास समझ कर सांसारिक मनुष्यों के साथ रहना पसन्द नहीं करते थे। जैसे विभीषण लङ्का, मित्र, धन आदि को त्याग कर श्रीराम के चरणों में समर्पित हो गए थे, वैसे ही श्रीकुलशेखरजी श्रीराम के चरण-कमलों में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिए थे। उन्हें अर्चावतारों में श्रीवेङ्कटेश तथा श्रीरङ्गनाथ में भी विशेष प्रेम था। श्रीकुलशेखरजी ने श्रीवेङ्कटेश भगवान् से प्रार्थना की है कि हे नाथ! आपके मन्दिर में मैं सोपान (सीढ़ी) बनकर रहूँ। जिससे सतत आपके दिव्य मुखारविन्द का दर्शन से अपने नेत्रों को तृप्त करता रहूँगा।

एक समय उन्होंने श्रीरङ्ग माहात्म्य में सुना कि श्रीरङ्गपुरी में निवास करने की इच्छा मात्र से ही मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है। फिर श्रीरङ्गम् क्षेत्र में नित्य निवास करने का फल कहना ही क्या है। उससे राजा कुलशेखर ने श्रीरङ्ग धाम की यात्रा करने का निश्चय किया। मन में विचार करने लगे कि धन, पुत्र, परिवारादि वस्तुएँ अनित्य हैं। इसलिए मुझे अब श्रीरङ्गपुरी में भगवान् रङ्गनाथ की सेवा करनी चाहिए। ऐसा निश्चय कर उन्होंने श्रीरङ्गपुरी की यात्रा की घोषणा कर दी। श्रीकुलशेखर द्वारा अपनी प्रजा को त्यागकर श्रीरङ्ग यात्रा की घोषणा से मन्त्रियों को बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने विचार किया कि यदि राजा कुलशेखर एक बार भी श्रीरङ्गम् चले गए और वहाँ श्रीरङ्गनाथ भगवान् के

सौन्दर्यमय दिव्य श्रीविग्रह के दर्शन कर लिए तो पुन: उनका केलिपट्टन में लौटना असम्भव है। अत: उनकी श्रीरङ्ग यात्रा में हमें विघ्न उपस्थित करना चाहिए।

मन्त्रियों ने श्रीवैष्णवों को बुलाकर उनसे कहा कि राजा कुलशेखरजी कल प्रात:काल श्रीरङ्गम् के लिए प्रस्थान करने वाले हैं, यदि वे श्रीरङ्गम् चले गए तो पुन: उनका यहाँ लौटना सम्भव नहीं होगा। अत: आपलोग कुछ ऐसा उपाय करें जिससे उनकी यात्रा स्थगित हो जाय। मन्त्रियों की प्रार्थना सुनकर श्रीवैष्णव महात्मा जिस समय राजा प्रस्थान करने वाले थे, उसी समय वे सभी उनके सामने आ गए। राजा ने उन्हें देखकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद लिया। उन्होंने विचार किया कि श्रीवैष्णव भागवतों की सेवा करना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। अत: श्रीकुलशेखर ने अपना श्रीरङ्गम् यात्रा का विचार स्थगित कर समस्त श्रीवैष्णवों की विधिवत् सेवा की। मन्त्रियों के द्वारा प्रेरित होकर आने वाले श्रीवैष्णवों की सेवा में प्रतिदिन व्यस्त रहने के कारण राजा कुलशेखर की श्रीरङ्ग यात्रा स्थगित हो जाती थी।

श्रीकुलशेखर स्वामी ने एक विद्वान् से सुना कि 'वेद प्रतिपाद्य परम पुरुष परमात्मा को श्रीराम रूप में अवतार लेने पर वेद वाल्मीकि के मुखारविन्द से रामायण रूप में प्रकट हो जाता है। अत: समस्त श्रीवैष्णवों को आजीवन श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का श्रवण करना चाहिए'। विद्वान् के वचन का प्रभाव कुलशेखरजी पर पड़ा। उससे उन्हें रामायण की कथा सुनने में विशेष अभिरुचि हुई। वे प्रतिदिन रामायण की कथा सुनने लगे। एक दिन एक महात्मा अरण्यकाण्ड की कथा कह रहे थे, उस प्रसङ्ग में उन्होंने कहा कि 'खर-दूषण आदि चौदह हजार राक्षसों की सेना पञ्चवटी में श्रीराम के ऊपर चढ़ाई कर दी। श्रीराम अकेला हैं' यह सुनकर प्रेमातिशय के कारण श्रीकुलशेखरजी को अतीत घटना प्रत्यक्षवत् प्रतीत होने लगी। अत एव उन्होंने भगवान् श्रीराम की सहायता के लिए चतुरङ्गिणी सेना को साथ लेकर चलने का निश्चय कर लिया। मन्त्रियों को राजा के इस असामयिक निर्णय से आश्चर्य हुआ। उन्होंने श्रीवैष्णव महात्मा से प्रार्थना की कि वे राजा को समझा कर रोक लें। महात्मा ने रामायण के आगे का प्रसङ्ग वर्णन करते हुए राजा को बाताया कि 'धर्मात्मा श्रीराम ने आधे क्षण में उन क्रूरकर्मा चौदह हजार राक्षसों की विशाल सेना का विनाश कर दिया। महर्षियों को भगवान् श्रीराम के इस अद्भुत पराक्रम को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई और जनकनन्दिनी श्रीजानकी ने प्रसन्नता से श्रीराम का आलिङ्गन किया'। विजय के इस पावन प्रसङ्ग को सुनकर श्रीकुलशेखरजी बहुत प्रसन्न हुए। प्रसन्नतावश उन्होंने अपने शरीर के आभूषण उतारकर श्रीवैष्णवों को दान कर दिया। तदनन्तर राजा ने अपनी सेना को लौट जाने का आदेश दिया।

भगवान् श्रीराम का प्रथम दर्शन

राजा श्रीकुलशेखर को भगवान् श्रीराम एवं श्रीवैष्णवों के प्रति अनन्य भक्ति थी। उनकी सन्निधि में सदा श्रीवैष्णव रहते थे। यदि उनके पास कोई अवैष्णव आ जाय तो वह अवश्य श्रीवैष्णव बन जाता था। इस तरह उनके शासनकाल में समस्त प्रजा श्रीवैष्णव बन गयी थी। राजा कुलशेखरजी प्रतिदिन श्रीवैष्णवों के साथ मौनव्रत धारण करके श्रीरामायण एवम् अन्य सात्त्विक पुराणों की कथा सुनते थे। कथा सुनाने वाले विद्वान् महात्मा श्रीराम की उत्कर्षता के ही प्रसङ्ग सुनाते थे। एक दिन कथा सुनाने वाले श्रीवैष्णव किसी कारणवश राजा के पास नहीं आये। उन्होंने उस दिन अपने पुत्र को भेज दिया। वह रामायण के रहस्य से अनभिज्ञ था जिसके कारण प्रसङ्ग पर ध्यान नहीं दिया। प्रसङ्ग

था सीता हरण का। पण्डित ने कहा कि रावण संन्यासी वेष धारण कर पञ्चवटी में आया और सीता का हरण कर लङ्का ले गया। राजा कुलशेखरजी यह प्रसङ्ग सुनते ही क्रोधावेश में होकर बोले कि दुष्ट पापात्मा रावण में यह सामर्थ्य है कि मेरे रहते हुए माता जानकी जी का अपहरण कर ले। मैं अभी उसकी लङ्कापुरी को भस्म करके माता जानकी को वापस लाता हूँ। यह करकर उन्होंने अपनी समस्त सेना को लङ्का पर चढ़ाई करने का आदेश दे दिया और स्वयं भी तलवार तथा धनुष-बाण लेकर सेना के आगे-आगे चलने लगे।

भगवान् श्रीराम की अनन्य भक्ति के कारण राजा को समझाने और वापस लाने की शक्ति किसी में नहीं रही। राजा की इस अद्भुत राम भक्ति को देखने के लिए देवतागण विमानों पर चढ़कर आकाश मार्ग से आने लगे। राजा कुलशेखर जी के आदेश से उनकी सेना समुद्र में प्रवेश कर लङ्का की ओर बढ़ने लगी। भक्तवत्सल करुणा सागर भगवान् श्रीराम अपने भक्त की इस अद्भुत लीला को देखकर राजा के सन्मुख प्रकट होकर कहने लगे कि हे पुत्र! मेरे रहते हुए तुमने ऐसा श्रम उठाया, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। मैं युद्ध में रावण का विनाश कर जानकी जी को वापस ले आया हूँ। तदनन्तर भगवान् श्रीराम ने जानकीजी को उनके समक्ष उपस्थित कर दिया। श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के दर्शन कर राजा कुलशेखर बहुत प्रसन्न हुए और सेना सहित भगवान् के साथ नगर की ओर प्रस्थान किए। मार्ग में भगवान् अकस्मात् अन्तर्धान हो गए। भगवान् को न देखकर राजा को अत्यन्त दुःख हुआ लेकिन वे क्षणभर में समस्त स्थिति को समझ कर सेना को नगर की ओर चलने का आदेश दिया। उन्हें यह अनुभव हुआ कि मैंने प्रवचनकर्त्ता के मुख से रामायण प्रवचन में सीताहरण के प्रसङ्ग को सुनकर जो यह लङ्का पर चढ़ाई करने का उपक्रम किया ये सब गलत है।

प्रतिदिन राजा कुलशेखरजी श्रीवैष्णवों को उत्तम भोजन से सन्तुष्ट रखते थे। वे समस्त राज्य का भार श्रीवैष्णव महात्माओं के ऊपर छोड़कर भगवान्, भागवत एवम् आचार्य के दास रूप में अपने को अनुभव करते रहते थे। यह राजा का व्यवहार उनके मन्त्रियों को प्रिय नहीं लगता था। एक बार मन्त्रियों ने विचार किया कि महाराज अपना पूरा समय श्रीवैष्णवों के संग में व्यतीत करते हैं। सदा श्रीवैष्णवों से घिरे रहते हैं। इससे राज्य के कार्य में शिथिलता आ रही है। अतः मन्त्रियों ने हाथ जोड़कर राजा से निवेदन किया कि हे राजेन्द्र! मोक्षार्थी महात्माओं का कर्त्तव्य है भगवान् तथा भागवतों की सेवा करना और राजा का कर्त्तव्य है अपनी प्रजा का पाजन। अपने-अपने कर्त्तव्य के पालन से दोनों को सुख मिलता है। मन्त्रियों की बात सुनकर राजा कुलशेखर ने कहा कि मुक्ति और भुक्ति ये दोनों श्रीवैष्णवों की प्रसन्नता से प्राप्त होती है। अतः श्रीवैष्णव महात्मा ही मेरे प्राण हैं। आपलोग जो मुझे श्रीवैष्णवों से विमुख करना चाहते हैं यह मुझे असह्य है। मन्त्रीगण राजा और श्रीवैष्णव महात्मा में मतभेद कराने के लिए उपाय खोजने लगे।

भगवान् श्रीराम का द्वितीय दर्शन

एक समय राजा कुलशेखर जी अपने बहूमुल्य आभूषणों से विभूषित होकर राजसिंहासन पर बैठे हुए थे। उसी समय परम भागवत श्रीवैष्णव वहाँ आ गए। राजा ने अपने सिंहासन से उतर कर उन श्रीवैष्णवों को साष्टाङ्ग प्रणाम करके उचित सत्कार किया। महात्मागण सत्कृत होने के बाद भगवत्कथा करने लगे। राजा दोपहर तक श्रीवैष्णव सन्तों के पास बैठकर कथारस पान करते रह गये। तदनन्तर वे सन्तों से आज्ञा लेकर मध्याह्न स्नान के लिए चले

गये और अपने आभूषणों को सिंहासन पर रख दिये। स्नान, तिलक एवं सन्ध्यावन्दन के बाद राजा कुलशेखरजी जब अपने सिंहासन पर आये तो वहाँ आभूषण नहीं थे। उन्होंने मन्त्रियों से पूछा कि मैं आपलोगों के समक्ष ही सिंहासन पर आभूषण रखा था, वे क्या हो गये। तुमलोग शीघ्र उनका पता लगाओ नहीं तो मैं तुमलोगों को दण्डित करूँगा। मन्त्रियों ने हाथ जोड़कर राजा से कहा कि महाराज इतनी देर में यहाँ दूसरा कोई व्यक्ति नहीं आया है। केवल श्रीवैष्णव महात्मा ही यहाँ आये थे। बार-बार रोकने पर भी वे नहीं मानते। कभी भी कहीं घुस जाते हैं। अत: उन लोगों के अतिरिक्त आभूषणों की चोरी करने वाला अन्य व्यक्ति नहीं है।

मन्त्रियों के मुख से श्रीवैष्णवों की निन्दा और उनके ऊपर मिथ्या आक्षेप के पापमय वचन सुनकर राजा कुलशेखर ने मन्त्रियों को दण्ड देने के लिए मन में निश्चय करके उनसे कहा कि संसार में सब पाप भगवान् श्रीमन्नारायण के नाम स्मरण से मिट जाते हैं और भगवान् की निन्दा करने से जो पाप उत्पन्न होते हैं वे श्रीवैष्णव महात्माओं की स्तुति करने से नष्ट हो जाते हैं; परन्तु श्रीवैष्णवों की निन्दा करने से जो पाप होते हैं वे किसी उपाय से नहीं मिट सकते। अत: तुमलोगों ने जो श्रीवैष्णवों की निन्दा की है उस अपराध के कारण आज तुम लोगों को में दण्डित करता हूँ। इसमें मेरा अपयश नहीं, किन्तु श्रीवैष्णवों पर लगाये गये चोरी के आरोप का मार्जन है। अब मैं सर्वप्रथम सबके सामने उन श्रीवैष्णवों की निर्मलता को प्रमाणित करूँगा। यह कहकर राजा कुलशेखर ने एक भयङ्कर सर्प को मिट्टी के घड़े में रखकर राज्यसभा में मँगवाया और सबको सम्बोधित करके कहा कि श्रीवैष्णव महात्मा संसार के विषयों से तृष्णा रहित हैं, वे कदापि चोर नहीं हैं। मैं इस बात को आप सबके समक्ष प्रमाणित कर रहा हूँ। यदि महात्मा निर्दोष हैं तो यह विषैला सर्प मुझे नहीं डँसेगा, ऐसा कहकर राजा ने घड़े के ढक्कन को उठाकर अपना हाथ उसमें डाल दिया। उन्होंने घड़े में रखे हुए सर्प को अपने हाथ से बार-बार स्पर्श किया; परन्तु वह विषैला सर्प राजा के हाथ को छुआ तक नहीं, काटना तो दूर रहा। इस आश्चर्यमय कार्य को देखकर आकाश से देवताओं ने राजा पर पुष्पों की वर्षा की और दुन्दुभि बजाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

इस कठिन और पवित्र कार्य से प्रसन्न होकर राजा के समक्ष भगवान् श्रीराम प्रकट हो गए। उन्होंने कृपा-कटाक्ष से राजा को देखते हुए, उनसे कहा कि राजन्! आज मैं आपकी श्रीवैष्णव भागवत निष्ठा से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तदनन्तर भगवान् ने राजा का प्रेमालिङ्गन किया। प्रेमालिङ्गन करके वर माँगने के लिए कहा। राजा ने हाथ जोड़कर भगवान् से विनेदन किया कि हे प्रभो! आपकी पूर्णकृपा से दास के पास किसी वस्तु की कमी नहीं है, फिर भी यदि आपको वरदान देने की इच्छा है तो एकमात्र यही वरदान दीजिए कि दास की श्रद्धा भक्ति सदैव आपके चरण-कमलों में बनी रहे।

राजा कुलशेखर की एक पुत्री थी, जो नीला देवी के अंश से उत्पन्न हुई थी। भगवान् ने उसे प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। राजा ने प्रसन्न होकर अपनी सुपुत्री का विधिवत् भगवान् श्रीरङ्गनाथ के साथ पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कर दिया। भगवान् श्रीराम और श्रीरङ्गनाथजी दोनों एक ही तत्त्व हैं। भगवान् के चले जाने पर राजा के अद्भुत चरित्र और प्रभाव को देखकर मन्त्रीगण अत्यन्त भयभीत हो गये और जिन आभूषणों को चुराया था, उन्हें राजा को सामने रखकर अपराध-क्षमा करने की याचना की। राजा ने मन्त्रियों के अपराधों को क्षमा कर दिया और अपने पुत्र को शासन का भार सौंपकर श्रीवैष्णव महात्माओं की सेवा में समय व्यतीत करने लगे।

श्रीरङ्गम् की यात्रा सफल

राजा कुलशेखरजी रामनवमी के पुण्य महोत्सव पर भगवान् श्रीराम के तिरुमञ्जन अभिषेक की तैयारी में संलग्न थे। भगवान् के सब बहुमूल्य आभूषण उतार कर एक तफर रख दिये थे। जब तिरुमञ्जन के बाद शृङ्गार का समय आया तो राजा कुलशेखर ने देखा कि भगवान् का एक बहुमूल्य मोतियों की हार गायब है। जब बहुत खोज की गयी तो मन्त्रियों ने पुन: हार चुराने का आक्षेप श्रीवैष्णव महात्माओं पर लगा दिया। यह सुनते ही राजा ने फिर पहले के समान भागवत निन्दा को महान् पाप बताते हुए भगवत्कृपा से ऐसा चमत्कार दिखाया कि मन्त्रियों ने तत्काल हार लाकर उनके समक्ष रख दिया और अपने अपराधों के लिए क्षमा याचना की।

राजा कुलशेखर जी कुत्सित भावनापूर्ण श्रीवैष्णव निन्दा रूप कार्य से असन्तुष्ट हो राज्य का सम्पूर्ण कार्यभार अपने पुत्र को सौंपकर श्रीवैष्णव महात्माओं को साथ लेकर श्रीरङ्गम् चले गये। वहाँ श्रीरङ्गनाथ भगवान् के दर्शन से उनको बड़ा आनन्द मिला। वहाँ रहकर उन्होंने द्रविड़ भाषा में 'देवीगीत' नामक प्रबन्ध की रचना की। इस प्रबन्ध में भगवान् एवं भागवतों के वैभव का प्रतिपादन किया गया है। देवीगीत में १०५ गाथायें और सात दिव्य देशों का मङ्गलाशासन हैं, जो क्रमश: श्रीरङ्गक्षेत्र में रङ्गनाथ भगवान्, वृषभाचल में श्रीनिवास भगवान्, अयोध्या में श्रीराम भगवान्, चित्रकूट में गोविन्दजी, कृष्णपुरी में सौरीराज भगवान्, बानाचल में सुन्दरांग और बाराह नाथ भगवान् का मङ्गलाशासन है।

भगवान् श्रीरङ्गनाथ की कृपा से राजा कुल-शेखरजी ने द्रविड़ भाषा में १०० गाथाओं से युक्त एक महाप्रबन्ध भी बनाया। तदनन्तर अनेक दिव्य देशों में भगवान् का दर्शन करते हुए पाण्ड्यदेशीय श्रीगोपाल भगवान् की सन्निधि में रहकर महाप्रयाण किया।

राजा कुलशेखर ने अपने आपको सदा भगवान् श्रीराम एवं श्रीवैष्णव के निर्मल प्रेम में आह्लादित रखा। उनकी अपूर्व निष्ठा के फलवरूप भगवान् श्रीराम ने उन्हें अपने दिव्य स्वरूप का दो बार दर्शन दिया। अत: श्रीकुलशेखर जी एक महान् श्रीवैष्णव आलवार सन्त थे। सभी महापुरुषों ने उनके दिव्य चरित्र का अध्ययन कर अपने को महान् भाग्यशाली कहा है। जो इस आलवार के चरित्र को पढ़ते और सुनते हैं वे भगवान् एवं भागवतों के चरणों में निर्मल प्रेम प्राप्त कर मुक्ति के भाजन होते हैं।

●

शेषावतार श्रीरामानुजाचार्य का दार्शनिक विचार

प्रथमोऽनन्त रूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा।
तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजो मुनि:।।

जगत् के सारे पदार्थ अप्रकाशित हैं। कुछ ही ऐसे पदार्थ हैं, जो संसार के अप्रकाशित पदार्थों को प्रकाशित करते हुए अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हैं जैसे–सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदि। नेत्र तैजस पदार्थ है, फिर भी न अन्य पदार्थ को प्रकाशित करता है और न ही अपने को। नेत्र सूर्य, अग्नि आदि प्रकाशक पदार्थों के सहयोग से ही किसी चीज को देखता है। वेदों में परोक्ष या प्रत्यक्ष पदार्थों को प्रमाणित करते हुए अपने को भी प्रमाणित करने की शक्ति है। जैसे संसार के पदार्थों को प्रकाशित करने के लिए सूर्य, अग्नि आदि प्रकाशक चीजें आवश्यक हैं, वैसे ही वैदिक परोक्ष या प्रत्यक्ष तत्वों को प्रकाश में लाने के लिए सात्विक ज्ञान आवश्यक है। वह ज्ञान भी वेद प्रतिपाद्य परमात्मा

के चरणों में प्रेम सहकृत होना चाहिए। प्रेम मिश्रित ज्ञान से परोक्ष या प्रत्यक्ष वैदिक तत्व का यथार्थ स्वरूप समझ में आता है। ब्रह्म तथा जीव का स्वरूप अप्रत्यक्ष है और माया का अधिकांश स्वरूप प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश अनित्य है या नित्य इसका निर्णय वेद से ही होता है। बुद्धिजीवी प्राणी मानव की आयु, शक्ति और बुद्धि अल्प है। सृष्टि के आरम्भ से प्रलय पर्यन्त रहने वाला कोई मानव नहीं है, जो यह कह सके कि माया नित्य है या अनित्य। अत: इन चीजों को समझने के लिए सृष्टि-प्रलय काल में सदा रहने वाला सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमात्मा की वैदिक-वाणी का ही सहयोग अपेक्षित है।

बुद्ध ने शून्यवाद को स्वीकार किया है। उन्होंने ब्रह्म एवं जीव की नित्य सत्ता को नहीं स्वीकारा। उनकी दृष्टि में ब्रह्म और जीव तत्व का यथार्थ ज्ञान कराने वाला वेद भी अप्रमाणिक है।

सातवीं शताब्दी में श्रीशङ्कराचार्य का जन्म हुआ। उन्होंने शून्यवाद से ऊपर उठकर एक ब्रह्म-तत्व को सही माना और माया को अनित्य तथा जीव को ब्रह्म स्वरूप कहा है। उनके मत में अन्त:-करण से युक्त चैतन्य ही जीव है। अन्त:करण रूप उपाधि को हट जाने पर वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। ब्रह्म स्वरूप होना ही उनके मत में मुक्ति है। वह ज्ञान से प्राप्त होती है। उनके मत में ब्रह्म निर्गुण है।

उन्होंने गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र की व्याख्या कर यह सिद्धान्त दिया है; परन्तु उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र वास्तविक उसी को प्रकाशित करते हैं, जिसमें परमात्मा के प्रति भक्ति होती है। प्रेम रहित ज्ञान वाले उपनिषदादि के सही अर्थ नहीं कर सकते। उपनिषद्, गीता आदि दूधारू गाय के समान हैं। जैसे बच्चा के बिना गाय दूध छिपा लेती है, उसी प्रकार भगवत् प्रेम रहित व्यक्ति जब उपनिषद्, गीता आदि का अर्थ करने लगता है, तब वे अपने यथार्थ भाव को छिपा लेते हैं। इसी भाव से श्रीकुरेश स्वामी ने पञ्चस्तवी में कहा है—

ये तु त्वदऽघ्रि सरसीरुह भक्ति हीना
तेषामभीरपि नैव यथार्थबोधः ।

अर्थात् जिन्हें भगवान् के चरणों में भक्ति नहीं होती, उन्हें वेद अपने यथार्थ अर्थ को नहीं देते हैं। जब उपनिषदादि की व्याख्या कर ब्रह्म, जीव, माया और भगवत् प्राप्ति के साधन-स्वरूप का जनता के समक्ष प्रकाशित करने वाले आचार्य की आवश्यकता हुई तब उस काम के लिए भगवत् प्रेरणा से दशवीं शताब्दी में श्रीरामानुजाचार्य जी का अवतार हुआ। वे भगवान् के शैय्या स्वरूप शेष के अवतार थे। उन्होंने गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र जो प्रस्थानत्रयी के नाम से प्रसिद्ध है, उनकी वास्तविक व्याख्या कर ब्रह्म, जीव, माया और ब्रह्म प्राप्ति के साधन स्वरूप भक्ति को प्रकाशित किया।

उन्होंने वैदिक वचन के अनुसार कहा कि ब्रह्म सौशील्य, वात्सल्य, सौलभ्य आदि अनन्त कल्याण गुणों से परिपूर्ण है। इसीलिए वेद ब्रह्म को सगुण कहता है। प्राकृत सत्व, रज और तम रूप गुणों से रहित होने के कारण ब्रह्म को निर्गुण कहा जाता है। एक ही ब्रह्म निर्गुण और सगुण दोनों हैं। मानव कल्याण के लिए वही श्रीराम, कृष्ण के रूप में अवतार ग्रहण करते हैं।

जीव नित्य, अणु और ब्रह्म का दास है। यह स्वत: निर्विकार एवं ज्ञानानन्द स्वरूप है। माया से सम्बन्ध होने के कारण इसे विकार तथा दु:ख का अनुभव होता है। माया के सम्बन्ध नष्ट हो जाने पर जीव ब्रह्म के समान दिव्य रूप धारण कर वैकुण्ठ में भगवान् की सेवा में संलग्न हो जाता है। मुक्ति का यही स्वरूप है। भक्ति से मुक्ति होती है। भगवान् में अविरल प्रेम को भक्ति कहते हैं। कर्म-ज्ञान अङ्ग है और भक्ति अङ्गी है। निष्काम कर्म पालन से जीव

निर्मल होता है और निर्मल जीव में ज्ञान तथा भक्ति का उदय होता है। भक्ति के बिना जीव भवबन्धन से मुक्त नहीं हो सकता है। भक्ति की सिद्धावस्था प्रपत्ति है। दीन, हीन, अकिञ्चन बनकर भगवान् के दिव्य चरणों में अपने को समर्पित कर देना प्रपत्ति है। उसे शरणागति भी कहते हैं। भक्ति-प्रपत्ति से परमात्मा शीघ्र प्रसन्न होते हैं।

माया की दो अवस्था होती है–स्थूल और सूक्ष्म। सृष्टिकाल में माया स्थूल रूप से रहती है और प्रलय काल में सूक्ष्म रूप में। उसे ही क्रमश: व्यक्त और अव्यक्त रूप कहते हैं। इसका नाश नहीं होता; परन्तु वह परिणामी है स्थूल से सूक्ष्म रूप में परिणत हो जाती है। जीव के साथ माया का सम्बन्ध अनित्य है। भगवत् निमित्त कर्म करने से भी भगवान् को प्रसन्नता होती है। चूँकि भगवद् निमित्त कर्म करना भी भक्ति ही है। अत एव श्रीस्वामी रामानुजाचार्यजी महाराज ने प्रेमपूर्वक मन्दिर निर्माण करना, मूर्ति की स्थापना करना, मूर्ति की पूजा करना, उनके समक्ष कीर्तन-भजन करना, मूर्ति के दर्शन करना, प्रदक्षिणा तथा साष्टाङ्ग प्रणाम आदि करना मुक्ति के साधन हैं–ऐसा कहा है। अत: सभी वैष्णवाचार्य मूर्ति की उपासना अवश्य करते हैं। आचार्यजी ने प्रपत्ति तथा भगवत्प्रेम में मानवमात्र का अधिकार स्वीकार किया है। उन्होंने वर्णाश्रम धर्मानुष्ठान को भक्ति उत्पत्ति में कारण माना है। सभी वर्ण और आश्रम के लोग अपने-अपने कर्तव्य कर्म रूप स्वधर्म के पालन से भगवान् के प्रिय पात्र होते हैं।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।

(गीता)

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः ।।

(विष्णुपुराण)

अर्थात् जो पुरुष वर्णाश्रम धर्म का पालन करता हुआ परम पुरुष भगवान् विष्णु की उपासना करता है, उससे भगवान् सन्तुष्ट होते हैं। कल्याण का दूसरा कोई मार्ग नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी श्रीआचार्य जी के सिद्धान्त का पूर्ण अनुसरण किया है। जब लक्ष्मणजी ने श्रीराम से पूछा है कि आप किस साधन से शीघ्र भक्त पर कृपा करते हैं। तब श्रीराम ने कहा कि—

नाते वेगि द्रवहुँ मैं भाई ।
सो मम भगति भगत सुखदाई ।।

पुन: उन्होंने कहा कि उस भक्ति के लिए लोग श्रुति प्रतिपादित वर्णधर्म के पालन करते हैं। उससे उनमें विषय भोग से वैराग्य होता है। तदनन्तर मेरे चरणों में अनुराग होता है—

निज निज कर्म निरत श्रुति रीति ।।
एहि कर फल पुनि विषय विरागा ।
तब मम धर्म उपज अनुरागा ।।
श्रवणादिक मम भक्ति दृढ़ाहि ।
मम लीला रति अति मन माहीं ।।

इससे भगवान् की भक्ति में वर्णाश्रम धर्म की विशेष उपादेयता सिद्ध होती है।

जीव को निर्मल बनाकर ब्रह्म तक पहुँचाने में वेदों, पुराणों एवं संहिता शास्त्रों ने पञ्चसंस्कार को प्रमुख स्थान दिया है। पञ्चसंस्कार ये हैं—दोनों भुजाओं में सद्गुरु के द्वारा चक्र-शङ्ख से अङ्कित होना, ललाट में ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक लगाना, भगवत्-सम्बन्धी नाम रखना, मूल, द्वय तथा चरम मन्त्रों का ग्रहण करना और भगवान् के चरणों में अपने को समर्पण कर देना। इन पञ्च संस्कारों से संस्कृत होने पर ही परमात्मा की उपासना तथा मुक्ति का अधिकारी होता है। आचार्यजी ने असंख्य भक्तों को पञ्चसंस्कार से संस्कृत कर परम पद का अधिकारी बनाया। आज भी सभी वर्ण के भक्त उस परम्परा के अनुसरण में संलग्न हैं।

महर्षियों का अपूर्व चमत्कार

शास्त्रों का तथा स्वयं भगवान् का भी यही उद्देश्य है कि ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा तथा भगवद्भक्त भगवान् से बढ़कर हैं और वे भगवान् के अत्यन्त प्रिय भी हैं—**'यो मद्भक्तः स मे प्रियः'**। ऐसा इसीलिये कि वे दैवी सम्पत्ति से आप्लावित रहते हैं और समष्टि के कल्याण की तीव्र भावना से भावित रहते हैं। उनके सदाचरण सर्वदा सभी के लिये अनुकरणीय हैं। उनका स्वयं का कोई स्वार्थ नहीं रहता, केवल परमार्थ ही उनका स्वार्थ रहता है। सन्तों ने ऐसी-ऐसी दिव्य लीलाएँ की हैं, जिनके श्रवण, मनन तथा चिन्तन से भी परम कल्याण हो जाता है, लोक-परलोक दोनों बन जाते हैं। ऐसी ही कुछ लीलाएँ यहाँ दी जा रही हैं—

बहुत प्राचीन काल की बात है, ब्रह्माजी के मानसपुत्र मरीचि आदि ऋषि तप का अनुष्ठान किया करते थे और स्वाध्याय, साधन-भजन किया करते थे। उन्हीं दिनों की बात है, अत्रि कुल में 'अङ्ग' नाम के एक बड़े धर्मात्मा राजा हुए, वे अत्रि के समान ही तेजस्वी थे। उनका एक पुत्र हुआ, जो वेग नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह धर्म के तत्त्व को कुछ भी नहीं समझता था। उसका जन्म मृत्यु की कन्या सुनीथा के गर्भ से हुआ था। मातृकुल के दोष के कारण अधर्म में ही उसकी विशेष रुचि थी, अतः वह बड़ा ही लोभी और कामी निकला। उसने धर्म की मर्यादा भङ्ग कर दी और वैदिक धर्म का उल्लङ्घन करने लगा। उसने क्रूर प्रतिज्ञा कर ली थी कि किसी को भी यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ, जप-तप साधन एवं भजन आदि नहीं करने दिया जाय। मैं ही भगवान् हूँ, सब लोग मेरी ही पूजा करें।

कुछ दिनों तक ऐसा चला, किन्तु भगवान् के विधान में अधर्म की, अन्याय की, अनीति की सत्ता कब तक ठहर सकती है? वेन के आचरण से साधु-सन्त, ऋषि-मुनि सभी प्राणी यहाँ तक कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में हाहाकार मच गया। सभी कष्ट में पड़ गये, धर्म की गति ही रूक गयी। यज्ञों के अभाव में, पितृकर्मों के अभाव में देवता-पितर सभी को कष्ट होने लगा। वेन तो ऐसा चाहता ही था; परन्तु कब तक? अन्त में वात्सल्यमय भगवान् से अपनी प्रजा का दुःख देखा नहीं गया। उन्होंने मरीचि आदि ऋषियों के मन में प्रेरणा उत्पन्न की।

उस प्रेरणा से प्रेरित हो मरीचि आदि ऋषि वेन के पास गये और उससे बोले—'राजन्! राजा ईश्वर का अंश ही होता है, राजा को तो प्राण देकर भी अपनी प्रजा का पालन करना चाहिये, किन्तु आप इसके सर्वथा विपरीत आचरण कर रहे हैं। आप ऐसा अधर्म, ऐसा अत्याचार न करें, किन्तु मोह, अज्ञान तथा अहङ्कार की मूर्ति वेन को महर्षियों की बात अच्छी नहीं लगी, वह क्रोध से तमतमा उठा और महर्षियों की अनेक प्रकार से भर्त्सना करने लगा।

महर्षियों को वेन का ऐसा आचरण अच्छा नहीं लगा। वे चाहते तो उसी समय उसे अपनी क्रोधाग्नि से भस्म कर सकते थे, किन्तु क्रोध से तो तपस्या क्षीण हो जाती है, अतः उन्होंने वैसा नहीं किया। दैवी लीला भी कुछ ऐसी ही थी, महर्षियों को तो जगत् के कल्याण की लीला करनी थी। वेन को यों ही शापवश समाप्त कर देने से उनका उद्देश्य अधूरा रह जाता। इसलिए महर्षियों ने सोचा इसके शरीर का मन्थन करने से जगत् का कल्याण होगा, अतः दैवी प्रेरणा से प्रेरित होकर उन्होंने विलक्षण लीला प्रारम्भ कर दी। वेन का हठ देखकर उनमें कोप, आवेश तो हो ही चुका था, इसलिये उन्होंने राजा वेन को पकड़ कर बाँध लिया। उस समय वह उछल-कूद मचाने लगा; परन्तु महर्षियों ने उसे छोड़ा नहीं और रस्सियों से बाँध डाला। यद्यपि वेन

महाबली था। महान् पराक्रमी था, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही उसके आधिपत्य में था और साथ ही वह तामसी एवम् आसुरी शक्तियों का साक्षात् बिम्ब ही था, किन्तु सात्त्विक शक्ति के सामने आसुरी शक्ति का नर्तन कब तक चलता? अपने को सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिशाली, प्रभुतासम्पन्न तथा भगवान् ही समझने वाला वेन आज सत्त्व सम्पन्न मरीचि आदि ऋषियों के सामने असहाय-सा भूतल पर पड़ा था। भगवान् की लीला ही इसमें हेतु थी।

महर्षियों ने सर्वप्रथम वेन की बायीं जङ्घा का मन्थन किया। मन्थन के फलस्वरूप कुछ ही क्षणों में एक काले रंग का पुरुष उत्पन्न हुआ, जो बहुत छोटे कद का था। वह भयभीत हो मुनियों के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसे व्याकुल देख महर्षि अत्रि ने कहा—'निषीद' (बैठ जाओ) इससे उसका 'निषीद' नाम पड़ गया और वह निषाद-वंश का प्रवर्तक हुआ।

तदनन्तर महर्षियों ने पुनः अरणी की भाँति वेन की दाहिनी भुजा का मन्थन किया। उससे अग्नि के समान एक तेजस्वी पुरुष प्रकट हआ। जो भयङ्कर टङ्कार करने वाले 'आजगव' नामक धनुष, दिव्य बाण तथा कवच-कुण्डल धारण किये हुए था। उसके उत्पन्न होते ही सर्वत्र आनन्द छा गया। क्षण भर में ही यह समाचार सर्वत्र फैल गया, सभी प्राणी वहाँ एकत्र होने लगे। उस दिव्य पुरुष के प्रादुर्भूत होते ही अधर्मगामी वेन स्वर्गगामी हो गया। वह उत्पन्न पुरुष उसका पुत्र कहलाया। ऐसे महात्मा स्वरूप पुत्र ने उत्पन्न होकर अपने पिता 'वेन' को 'पुम' नामक नरक से तार दिया। उसकी सद्गति हुई।

उस दिव्य पुरुष का नाम था पृथु। ब्रह्मा आदि सभी देवता वहाँ उपस्थित हुए। उसका राज्याभिषेक करने के लिये सभी नदियाँ तथा स्वयं समुद्र जल लेकर वहाँ आये। सभी ने मिलकर महाराज पृथु का अभिषेक किया। उन महर्षियों ने प्रजा को सम्बोधित कर कहा—ये महाराज पृथु सम्पूर्ण पृथ्वी के अधिपति होंगे और प्रजाओं का भरण-पोषण करेंगे। उस समय पृथ्वी का रूप ऐसा नहीं था, जो आज दिखलायी पड़ रहा है। यह घटना सृष्टि के आरम्भ की है। उस समय पृथ्वी का रूप उबड़-खाबड़ था, भूमि समतल नहीं थी, कृषि योग्य भूमि का अभाव था। जिसके कारण अन्न, गोरक्षा, खेती और व्यापार आदि का कोई भी कार्य सम्भव नहीं हो पाता था। तब महाराज पृथु ने भूमि को समतल बनाया। अपने धनुष की नोक से पर्वतों को उखाड़ डाला। भूमि का जो-जो भाग समतल होता गया, प्रजा वहीं बसने लगी। उस समय प्रजा का आहार केवल फल-मूल ही था।

महात्मा पृथु का ऐसा भयङ्कर रूप देखकर भयभीत हो पृथ्वी गौ का रूप धारण कर उनकी शरण में आयी। तब महाराज पृथु ने पृथिवी से कहा—देवि! तुम मेरी आज्ञा मानकर समस्त प्रजा की रक्षा करो; क्योंकि तुम सबको धारण करने में समर्थ हो। इस समय तुम मेरी पुत्री बन जाओ। पृथु की आज्ञानुसार भूदेवी महाराज पृथु की पुत्री बन गयी और तभी से पृथु की पुत्री होने से यह भूमि 'पृथ्वी' कहलाने लगी। महाराज पृथु ने इस पृथ्वी का विभाग और शोधन किया, जिससे यह अन्न की खान और समृद्धशालिनी बन गयी।

गोरूपा पृथ्वी ने कहा—राजन्! इस समय मैं गाय के रूप में हूँ और मेरी अमृतमयी दुग्धधारा से सम्पूर्ण सृष्टि का आप्लावन होगा, अतः आप किसी को बछड़ा बनायें, जिसके लिए मैं स्नेहयुक्त दूध प्रदान कर सकूँ। राजा पृथु ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाया। अपने हाथ से ही गोरूपा पृथ्वी का दोहन किया और गोरूपा पृथ्वी का यह दूग्ध विभिन्न अन्नों में विशालतम राशि के रूप में परि-

वर्तित हो गया। उसी अन्न से प्रजा ने जीवन धारण किया। उस समय ऋषि, देवता, पितर, नाग, दैत्य, यक्ष, पुण्यजन, गन्धर्व, पर्वत और वृक्ष–सबने पृथ्वी का दोहन किया। इस गोदोहन में उनके दूध, बछड़े, पात्र और दुहने वाले–ये सभी पृथक्-पृथक् थे। यथा–ऋषियों ने चन्द्रमा को बछड़ा बनाया, बृहस्पति ने दुहने का काम किया, तपोमय उनका दूध था और वेद ही उनके पात्र थे।

इस प्रकार सभी ने गोरूपा पृथ्वी का दोहन कर अपने-अपने अभिलषित पदार्थ प्राप्त किये। यह गोरूपा पृथ्वी तभी से सबके लिये धारण-पोषण तथा रक्षण करने वाली बन गयी। यह सब प्रताप महाराज पृथु का ही था। उनके ही शौर्य एवं पराक्रम से पृथ्वी वसुन्धरा हो गयी। सृष्टि में सर्वत्र आनन्द छा गया। सबका कल्याण हो गया। कदाचित् दैवी प्रेरणा न होती और ठीक समय पर लीलामय भगवान् वेन को मथने वाली बुद्धि मरीचि आदि महर्षियों को प्रदान नहीं करते और महर्षिगण भगवान् की लीला से प्रेरित होकर मन्थन लीला नहीं करते तो पृथ्वी का संस्कार करने वाले महात्मा पृथु का आविर्भाव नहीं होता और चराचर प्राणियों की क्षुधा-निवृत्ति हो नहीं पाती, सृष्टि का विस्तार ही नहीं होता। भगवान् के इन लीला सहचरों को बार-बार नमन है।

द्रौपदी की आर्तपुकार पर साड़ी बने भगवान्

भगवान् में ऐसे अनेक गुण हैं, जिनका विकास इस मर्त्यलोक में ही होता है। जैसे–भक्त-वात्सल्य, पतितपावन, दीनरक्षण, सौशील्य, सौलभ्यादि। दिव्यलोक में कोई पतित तो मिलता नहीं है जिसको उद्धार कर वे पतित-पावन कहलायें, न कोई दीन मिलता है जिस पर कृपा कर दीनबन्धु कहलायें और न कोई वैसा दोष युक्त भक्त मिलता है जिसके दोष हटाकर भगवान् भक्तवत्सल कहलायें। सामान्य जन भी इसी भूतल पर मिलते हैं जिसे मिलने पर भगवान् का सौशील्य गुण प्रकट होता है।

यहाँ एक उदाहरण स्मरणीय है। एक अच्छे वैद्य एक स्थान पर रहकर चिकित्सा के लिए तैयार हो गये, वे अनेक रोगों के उपचार करते थे। उन्होंने प्रचारक साधनों से अपने सम्बन्ध में विशेष प्रचार करवाया; परन्तु वह एक ऐसा क्षेत्र था जहाँ किसी को किसी प्रकार का रोग होता ही नहीं था। बिना रोग के वैद्य जी के पास कोई आता ही क्यों? परिणाम हुआ कि किसी रोग का उपचार उन्हें करने का अवसर नहीं मिला। अत: उनका किसी भी गुण का विकास नहीं हुआ। उनकी आर्थिक समस्या का समाधान भी नहीं हुआ। वे वैद्य अब यह पता लगाने लगे कि किस क्षेत्र के लोग अधिक रोगी होते हैं, उन्हें एक क्षेत्र का पता चला जहाँ सब प्रकार के रोगी रहते थे। वैद्यजी उसी क्षेत्र में जाकर अपना चिकित्सालय बनवाये। वहाँ रोगियों की भीड़ होने लगी। वैद्यजी की दवा से प्राय: सभी रोगी स्वस्थ्य होने लगे। उससे वैद्य का सुयश विशेष बढ़ा। उनके गुणों का विशेष विकास होने से आर्थिक समस्याओं का भी समाधान होने लगा। उसी प्रकार भवरोग के चिकित्सक हैं–हमारे भगवान्। उन्हें वैकुण्ठ में एक भी दिन, पतित आदि नहीं मिलते, जो उनके शरण में आवें। इसलिए वैकुण्ठ में उनके गुणों का विशेष विकास नहीं हुआ।

अत: वे वैकुण्ठ छोड़कर इस मर्त्यलोक में आ गये। यहाँ दीन, पतित आदि मिलने लगे। उससे उनके गुणों का विकास हुआ। यद्यपि भगवान् अवाप्त समस्त काम हैं, उन्हें किसी चीज की चाह नहीं होती है; परन्तु वे जीवों का सदा कल्याण चाहते हैं। वे

सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान होने के कारण सङ्कल्प से सारे प्राणियों का उद्धार कर सकते हैं, किन्तु उन्हें जगत् रूप प्रपञ्च को भी बनाये रखना है।

सर्वज्ञोऽपि च विश्वेशः सदा कारुणिकोऽपि सन्।
संसारतन्त्रवाहित्वाद्रक्षापेक्षां प्रतीक्षते।।

क्योंकि यह उनकी लीला प्राङ्गण है। इसलिए व्यासजी ने कहा है कि **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** अर्थात् संसार भगवान् की लीला मात्र है। जैसे– सप्तद्विपवती वसुन्धरा पर राज्य करने वाले राजा समस्त शौर्य, वीर्य आदि से सम्पन्न होते हुए भी मनोरञ्जन के लिए गेंद आदि खेलते हैं, वैसे समस्त कामनाओं से परिपूर्ण अपने सङ्कल्प मात्र से सृष्टि पालन, संहार तथा मोक्ष प्रदान करने वाले भगवान् भी जगत् में लीला से आनन्द अनुभव करते हैं। इस लीला काल में भगवान् अनन्त जीवों पर कृपा कर भवसागर से उद्धार कर देते हैं। उसके लिए जीवन का कर्तव्य होता है कि भगवान् के चरणों में अपने को लगा दे। शास्त्र कहता है कि **'रक्षापेक्षां प्रतीक्षते'** अर्थात् भगवान् रक्ष्य जीवों की अपेक्षा की प्रतीक्षा करते हैं। इसका भाव यह है कि जब तक जीव भगवान् में प्रेम नहीं करता, तब तक उस पर भगवान् की कृपा नहीं होती। जीव का अभिमान भगवद्कृपा का विरोधी है। जब तक जीव में सांसारिक विषयों के कारण अभिमान बना रहता है, तब तक भगवान् उस पर ध्यान नहीं देते। जब जीव अहङ्कार रहित होकर भगवत्कृपा की आशा करने लगता है, तब भगवान् उसे अपना लेते हैं। जैसे गजेन्द्र एक हजार वर्ष तक ग्राह से लड़ता रह गया। उसमें अपने बल का अभिमान था कि मैं ग्राह से लड़कर अपने को छुड़ा लूँगा; परन्तु जब अपने को बचाने में असमर्थ हो गया वह और उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि भगत्कृपा बिना मेरी जान नहीं बचेगी, तब वह अहङ्कार शून्य दीन-हीन, अकिञ्चन बनकर नारायण के चरणों में शरणागत हो गया। भगवान् नारायण ने उसके दीन वचन से प्रसन्न होकर उसके पास आये और उसके शत्रु ग्राह को मारकर गजेन्द्र का कल्याण किये।

दुर्योधन की सभा में दु:शासन ने द्रौपदी को नङ्गी करना चाहा। द्रौपदी पाँचों पाण्डवों एवं भीष्म पितामह आदि से आशान्वित थी कि वे मेरी रक्षा अवश्य करेंगे; परन्तु उनसे द्रौपदी की रक्षा नहीं हुई। उन लोगों ने संविधान के अनुकूल द्रौपदी को बचाने के लिए अपने शक्ति का प्रयोग नहीं किया। द्रौपदी अनाथ बन गई। उसका ध्यान भगवान् श्रीकृष्ण की ओर गया। वे द्रौपदी के पास आना चाहते थे, कि पुन: द्रौपदी का मन पाण्डवों की ओर चला गया। भगवान् श्रीकृष्ण यह समझ कि द्रौपदी की ममता अभी पाण्डवों के प्रति है। उनसे अपनी रक्षा की चाह करती है। अत: द्रौपदी की रक्षा के लिए मेरी आवश्यकता नहीं है। द्रौपदी की ममता पूर्ण दृष्टि पाण्डवों की ओर लगी ही रह गई; परन्तु पाण्डवों ने किसी प्रकार से द्रौपदी की रक्षा के लिए प्रयास नहीं किया। उस समय द्रौपदी आर्त्त स्वर से पूर्ण समर्पित हो भगवान् श्रीकृष्ण को पुकारी—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।।
हे नाथ! हे रमानाथ! व्रजनाथार्त्तिनाशन!।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन!।।
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द! कुरुमध्येऽवसीदतीम्।।

द्रौपदी की करुण पुकार सुनकर भगवान् तुरन्त दौड़े आये और द्रौपदी के वस्त्रों के रूप में प्रकट होकर उसकी लाज बचाये। भगवत्कृपा से द्रौपदी की साड़ी अनन्त गुणा बढ़ गई। दु:शासन उसे खींचकर अन्त नहीं कर सका। इस तरह द्रौपदी ममता और अहङ्कार रहित होकर शुद्ध भाव से जब भगवान् की ओर लग गई, तब भगवान् ने उसके मनोरथ को पूरा किया। अत: भगवान् भक्त की शुद्ध भावना की अपेक्षा रखकर ही उस पर कृपा करते हैं।

गुरु-शिष्य संवाद

प्रपन्नः पारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये ।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ।।
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।

शिष्य—गुरुदेव! जगत् में जितने अध्यात्मशास्त्र हैं, उनमें श्रीमद्भगवद्गीता प्रधान ग्रन्थ है, ऐसा मैंने सुना है। आप सभी शास्त्र के मर्मज्ञ तथा परमदयालु हैं। अतः कृपा कर यह रहस्य बतलावें कि अन्य शास्त्रों की अपेक्षा गीता में कौन-सी विलक्षणता है?

गुरुजी—गीता एक ही शरीर में सम्पूर्ण विश्व की चीजों का दर्शन करा देती है। अन्य शास्त्रों में ऐसी विलक्षणता नहीं है।

शिष्य—हे कृपानिधान! एक ही शरीर में गीता विश्व का दर्शन कैसे करा देती है?

गुरुजी—सम्पूर्ण जगत् तीन तत्त्वों में विभक्त है–चित्, अचित् और ईश्वर। ये तीनों तत्त्व एक ही शरीर में रहते हैं।

शिष्य—गुरुदेव! चित् का अर्थ क्या है?

गुरुजी—चित् कहते हैं चेतन को, जो जीवात्मा शब्द से जाना जाता है। यह नित्य, अणु, ज्ञानाकार एवं ब्रह्म का दास है। शरीर का नियामक, धारक और शेषी भी यही है।

शिष्य—गुरुदेव! आपने कहा कि जीवात्मा ब्रह्म का दास है; परन्तु कुछ लोगों से सुना हूँ कि जीवात्मा और परमात्मा एक ही तत्त्व है?

गुरुजी—सुनो जी! जैसे स्वामी-सेवक ये दानों एक नहीं हो सकते; क्योंकि स्वामी सेवक का नियामक, शासक एवम् उससे सेव्य होता है और सेवक-स्वामी के नियन्त्रण में रहकर उनके आदेशानुसार कैङ्कर्य करता है, अतः परतन्त्र है । वे दोनों भिन्न-भिन्न गुण और शक्ति के कारण एक नहीं कहे जा सकते। उसी प्रकार ब्रह्म और जीव में भिन्नता है; क्योंकि ब्रह्म जीव का नियामक, शासक एवम् उससे सेव्य है और जीव ब्रह्म के नियमन एवं शासन में रहकर काम करता है। ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं अनन्त दिव्य कल्याण गुणों से परिपूर्ण है। जगत् का स्रष्टा, पालक, संहारक सबों का फल प्रदाता एवं स्वरूपतः व्यापक है। जीवात्मा अल्पज्ञ, कर्माधीन, अणु तथा प्राकृत सत्त्वादी गुणों से युक्त है। गीता ब्रह्म और जीव को भिन्न तत्त्व के रूप में ही बतलाती है। जिसने गीता के रहस्य को नहीं जाना है, वही दोनों को एक कहता है।

शिष्य—गुरुदेव! आप जीव और ब्रह्म का भेद बतलाकर मुझे सन्तुष्ट कर दिये। उन दोनों के एक होने का जो मुझे भ्रम था वह निर्मूल हो गया। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि अचित् किसे कहते हैं?

गुरुजी—अचित् का अर्थ होता है–जड़। उसे ही प्रकृति भी कहते हैं। वह पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार–इन आठ रूपों में विभक्त है। अहङ्कार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ मन, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द–ये सब उत्पन्न होते हैं। इन सबों का समुदाय ही शरीर है। अतः शरीर को प्राकृत कहते हैं। प्रकृति तीन रूप में रहकर जीवात्मा के उपभोग में आती है—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द–ये पाँच विषय भोग के रूप में, ग्यारह इन्द्रियों के द्वारा जीवात्मा रूपादि विषयों को भोगता है। अतः इन्द्रियाँ भोग के साधन के रूप में और जिस स्थान पर रहकर जीवात्मा विषयों का भोग करता है वह प्रकृति भोग स्थान रूप में हैं।

शिष्य—गुरुदेव! आपने अचित् तत्त्व का स्वरूप बतला दिया, जिसे मैं समझ भी गया हूँ; परन्तु एक

शङ्का यह होती है कि प्रकृति का तो नाश हो जाता है। वह तो स्थायी रहने वाली है नहीं? फिर उसे एक तत्त्व के रूप में हम कैसे स्वीकार करते हैं?

गुरुजी—प्रकृति परिणामी है। उसकी उसी अवस्था में परिवर्तन होता रहता है, किन्तु स्वरूपत: वह नष्ट नहीं होती है। सृष्टि और प्रलय के रूप में प्रकृति बदलती रहती है। अभी वर्तमान में जो पृथिव्यादि रूप में है और जिन नामों से उनका व्यवहार हो रहा है, प्रलयकाल में रूप और नाम से रहित होकर प्रकृति रहती है। इसलिये उस अवस्था का नाम है–सूक्ष्मावस्था। जैसे–किसी भी वृक्ष के बीज में वृक्ष का स्वरूप तिरोहित रहता है, उसी प्रकार सूक्ष्म प्रकृति में उसका स्थूल रूप तिरोहित हो जाता है। सृष्टिकाल में सूक्ष्म प्रकृति ही स्थूल रूप को धारण कर लेती है। उस अवस्था में नाम-रूप का व्यवहार होता है। इसलिये प्रकृति के स्वरूप में परिवर्तन मात्र होता है।

शिष्य—गुरुदेव! सभी प्राणियों में रहने वाला जीवात्मा एक है या अनेक?

गुरुजी—तुम्हारा प्रश्न उत्तम है। जीवात्मा अनन्त हैं। प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न जीव रहता है। यहाँ ध्यातव्य विषय यह है कि जीवात्मा तीन प्रकार के होते हैं–नित्य, मुक्त और बद्ध। जो सदा वैकुण्ठ में रहकर भगवान् की सेवा करते रहते हैं तथा जो कभी भी संसार में कर्मानुसार नहीं आते हैं वे नित्य कहे जाते हैं। जो संसार से मुक्त होकर वैकुण्ठ चले गये हैं, वे मुक्त कहलाते हैं और जो संसार के बन्धन में पड़े हुए हैं, वे बद्ध कहलाते हैं। चौरासी लाख प्रकार के शरीरों में रहने वाले सभी जीव माया के बन्धन में हैं। इस तरह नित्य, मुक्त और बद्ध–ये तीनों प्रकार के जीव अनन्त हैं। अगर सभी शरीरों में एक ही जीवात्मा रहता तो एक शरीर में दु:ख होने पर संसार के समस्त प्राणी दु:खी और सुख होने पर सुखी हो जाते; परन्तु ऐसा नहीं होता। प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार से सुख-दु:ख का अनुभव होता है, अत: जीव अनेक हैं।

भगवती गीता भी जीव की अनेकता का ही प्रतिपादन करती है। इस तरह एक ही शरीर में जीव, ब्रह्म और प्रकृति (माया) के स्वरूप और स्वभाव को समझ लेने पर संसार की सब चीजें समझ में आ जाती है। जैसे–एक शरीर में जड़ का जो स्वरूप है वही स्वरूप विश्व के समस्त जड़ पदार्थों का है। इसी तरह एक शरीरगत आत्मा का जो स्वरूप है वही स्वरूप समस्त आत्माओं का है। जैसे–एक शरीरगत जीवात्मा का नियामक, धारक और स्वामी ब्रह्म है। वैसे ही सभी जीवात्माओं के नियामक धारक एवं स्वामी वे ब्रह्म ही हैं।

गीता की गरिमा

गीता जीवन का सर्वस्व है। ज्ञान-रत्नों का समुद्र है। यह समस्त उपनिषदों का सार है। भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकली हुई अमृत की धारा है। गंगा के समान पाप निवारक तथा चन्द्रमा के समान ताप नाशक है। गीता जीवन का दर्पण है। जैसे मनुष्य अपने बाह्य स्वरूप का दर्शन शीशा में करता है वैसे ही ब्रह्म, जीव और विश्व स्वरूप का दर्शन गीता में होता है। मानव गीता रूप दर्पण में अपने यथार्थ स्वरूप को देखकर समझ जाता है कि मुझमें कितने गुण और कितने दोष हैं। मेरा कर्त्तव्य क्या है और अकर्तव्य क्या है? मैं सन्मार्ग से चल रहा हूँ या असन्मार्ग से? मैं संसार के कष्टों में क्यों पड़ा हूँ और उससे मेरी मुक्ति कैसे होगी?

पाठ गीता का सदा करना कुलोचित कर्म है, शब्द गीता का सुमिरना ही सनातन धर्म है।
चित्त में श्रीकृष्ण का सिद्धान्त धरना चाहिये, हिन्दुओं को नित्य गीता का पाठ करना चाहिए।।

भक्तिरस से विभोर मिथिलापुरी

अहोऽति धन्यं मम भूरि भाग्यं दत्तं त्वया मे निजदर्शनं हि ।
जातोऽद्य कायाधवतुल्य आराद्गृहं कृतार्थोऽस्मि कुलेन भूमन् ।।

मिथिलापुरी में राजा जनक के पास श्रीनारद-जी आये हुये थे, उसी समय दिग्विजय की कामना से मिथिलापुरी में प्रद्युम्नजी भी आ जाते हैं। प्रद्युम्न ने बड़े-बड़े ऊँचे सुनहले कलशों वाले महलों से अलङ्कृत उस पुरी को देखकर उद्धव से कहा कि हे मन्त्रिन्! बहुतेरे प्रासादों से भरी-पूरी भोगवती पुरी जैसी सुन्दर यह किसकी नगरी है? उद्धव ने कहा—हे मानद! यह राजा जनक की मिथिलापुरी है। परम भगवद्भक्त और ज्ञानी राजा धृति इस पुरी का राजा है। वह सभी धर्मात्माओं में अग्रणी, श्रीकृष्ण का भक्त और भगवान् को प्रिय है। बहुलाश्व उसका बेटा है, जो जन्म से ही भगवान् का भक्त है। उसको और विप्र श्रुतदेव को दर्शन देने के लिए भगवान् स्वयं यहाँ आयेंगे। द्वारका में श्रीकृष्ण राजा बहुलाश्व को बहुत याद करते हैं। बड़े-बड़े देवता भी उसे नहीं परास्त कर सकते, तब मनुष्यों की तो बात ही क्या है? राजा धृति ने अपनी उत्कट भक्ति से श्रीकृष्ण को अपने वश में कर लिया है। श्रीनारद जी बोले—हे राजन्! यह सुनकर प्रद्युम्न ने उद्धव को शिष्य बना लिया और स्वयं ब्रह्मचारी बनकर राजा धृति से मिलने गये। उनका उद्देश्य उस राजा की भक्ति की परीक्षा लेनी थी। इसी के लिए उद्धव के साथ वे मिथिलापुरी गये थे। वहाँ के सभी वीर धर्मशास्त्र के अनुसार माला और तिलक से शोभित थे। वे सब माला पर श्रीकृष्ण के नाम जप रहे थे।

वहाँ के प्रत्येक द्वार पर श्रीकृष्ण के नाम लिखे थे और उनके चित्र बने हुए थे। हर घर की दीवार पर गदा, पद्म, शङ्ख, चक्र और दशावतार के चित्र चित्रित थे। हर घर के आँगन में तुलसी के मन्दिर बने हुए थे। इस प्रकार उस नगरी के महलों तथा मनुष्यों को देखते हुए प्रद्युम्न मिथिलापुरी में गये। वहाँ के सभी निवासी भगवद्भक्त और माला-तिलकधारी थे।

चन्दन धारण करने योग्य बारहों स्थानों पर ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक लगाये हुये थे। ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी सभी ब्राह्मण वहाँ के मन्दिरों में विराजमान थे। ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा गदा की मुद्रा वे ललाट में लगाये और भगवन्नाम, शङ्ख, चक्र, पद्म, मत्स्य और कूर्म को दोनों भुजाओं में अङ्कित किये हुये थे। कुछ ब्राह्मण धनुष तथा बाण को मस्तक पर रक्खे हुए थे। वे हृदय पर नन्दक हल तथा मूसल धारण किये थे। उनको प्रद्युम्न ने देखा। उस नगरी की किसी गली में कोई भागवत सुन रहा था, तो कोई महाभारत, इतिहास तथा हरिवंश सुनता था। बहुत से लोग सनत्कुमारसंहिता, याज्ञवल्क्यसंहिता, पाराशर-संहिता, गर्गसंहिता तथा धर्मसंहिता सुन रहे थे। यत्र-तत्र पुराणों की कथायें भी हो रही थीं। वहाँ की गली-गली में लोग रामचरित की कथा से ओत-प्रोत वाल्मीकीय रामायण पढ़ या सुन रहे थे।

कुछ ब्राह्मण स्मृति तथा कुछ वेदत्रयी का अध्ययन कर रहे थे। कुछ विप्र यज्ञ कर रहे थे। कुछ ब्राह्मण राधाकृष्ण मन्त्र का जाप कर रहे थे। उनमें से कुछ गाते थे, कुछ नाचते थे और कुछ हरिकीर्तन कर रहे थे। हे राजन्! मिथिलापुरी के घर-घर में मैथिल लोग नौ लक्षणों से युक्त प्रेमलक्षणा भक्ति करते थे। इस प्रकार भगवान् प्रद्युम्न मिथिला नगरी देखते हुए राजद्वार पर जाकर मिथिलाधिपति को देखा। उन मिथिलेश की सभा में वेदव्यास, शुकदेव, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, गौतम, नारद और वृहस्पति

विराजमान थे। मूर्तिमान् वेद की भाँति धर्मवक्ता अन्यान्य हरिभक्त मुनि भी इधर-उधर दिखायी दे रहे थे। मिथिलेश धृति भक्तिभाव से मस्तक झुकाकर बलदेवजी की चरण पादुका का पूजन करते थे। वे श्रीकृष्ण तथा बलदेव के मुक्तिदायक नाम जपते थे। एकाएक शिष्य के साथ एक ब्रह्मचारी आया देखकर वे खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया। पाद्य-अर्घ्य आदि से उनकी पूजा करके राजा जनक ने हाथ जोड़कर ब्रह्मचारी से कहा—'आज मेरा जीवन सफल हुआ और मेरा घर पवित्र हो गया। आपके आगमन से सभी देवता, ऋषि और पितर प्रसन्न हो गये। आप जैसे निर्विकल्प और समदर्शी साधु हम जैसे दीन गृहस्थों पर कृपा करने के लिए ही विचरते रहते हैं।

ब्रह्मचारीजी बोले—हे राजन्! तुम्हारी प्रजा के हृदय में जैसी उत्कृष्ट विष्णु भक्ति है, उससे तुम धन्य हो, तुम्हारी मिथिलापुरी धन्य है और तुम्हारी प्रजा सब धन्य है। जनकजी बोले—यह नगरी मेरी नहीं है। न मेरी प्रजा है और न मेरा घर है। स्त्री-पुत्र-पौत्र आदि सब कुछ भगवान् श्रीकृष्ण के हैं। परिपूर्णतम श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। वे असंख्य ब्रह्माण्डों के स्वामी गोलोक में रहते हैं। वासुदेव, सङ्कर्षण (बलदेव), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध यह चतुर्व्यूह धरती पर अवतार है। हे ब्रह्मन्! शरीर, मन, वचन, बुद्धि तथा इन्द्रियों से मैंने जो सुकर्म किया है, उसका सारा फल मैंने श्रीकृष्ण को अर्पण कर दिया है। ब्रह्मचारीजी बोले—हे महाभाग विदेह! हे विष्णु भक्तों में श्रेष्ठ! तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न श्रीकृष्ण तुम्हें अपने में मिला लेंगे। जनकजी बोले—हे भगवन्! मैं तो आप जैसे श्रीकृष्ण भक्तों का दास हूँ। मैं मुक्ति और एकात्मता भी नहीं चाहता। ब्रह्मचारी जी बोले—हे राजन्! तुम बिना किसी कामना की अहेतुकी भक्ति करते हो। अत एव तुम अपनी निर्मल भक्ति के कारण प्रेमलक्षण से पूर्ण हो, किन्तु साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न दिग्विजय के लिए निकले हैं, किन्तु वे तुम्हारे घर नहीं आये। यही मुझे आश्चर्च है। जनकजी बोले—हे प्रभो प्रद्युम्न तो अन्तर्यामी, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और साक्षात् भगवान् हैं। क्या वे यहाँ नहीं हैं?

ब्रह्मचारी ने कहा—यदि ज्ञानदृष्टि से प्रद्युम्न को सर्वव्यापी मानते हो, तो प्रह्लाद की तरह हमें दिखा दो। यह बात सुनकर परम भगवद्भक्त राजा उनको प्रत्यक्ष धृति आँखों में आँसू भरके गद्‌गद वाणी में बोले—यदि मैंने निष्काम ईश्वर भक्ति की हो तो प्रद्युम्न भगवान् मेरे सम्मुख प्रकट हो जायें। यदि श्रीकृष्ण के भक्तों के प्रति मुझमें दास भाव है और मेरे ऊपर भगवान् की कृपा है तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो जाय। ऐसा कहते ही श्री प्रद्युम्नजी ब्रह्मचारी का स्वरूप त्यागकर राजा के समक्ष प्रकट हो गये।

यह चमत्कार देखकर ही भगवन्निष्ठ राजा धृति गद्‌गद हो गए। श्यामविग्रह, कमल सरीखे नेत्र, विशाल भुजा, जगत् के मनोहारी, पिताम्बरधारी, श्याम अलकों से शोभायमान मुखारविन्द वाले, शीत-कालीन बालसूर्य सदृश चमकीले किरीट कुण्डलधारी, करधनी, बाजूबन्द तथा नूपुर से देदीप्य-मान शरीर वाले भगवान् प्रद्युम्न को देखकर राजा धृति हाथ जोड़ और नमस्कार करके गद्‌गद वाणी में बोले—मेरा भाग्य धन्य है, जो आपने मुझे दर्शन दिया। आपने आज मुझको प्रह्लाद के तुल्य बना दिया। हे भूमन्! मैं अपने कुलसमेत कृत-कृत्य हो गया। प्रद्युम्न बोले—हे राजन्! तुम धन्य हो। तुम्हारे भक्ति-भाव की परीक्षा लेने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। तुमको अभी मेरी सारूप्य मुक्ति प्राप्त हो जायेगी। हे मिथिलेश्वर! तुमको इस लोक में बल, आयु, कीर्ति और अतिशय विख्यात यश प्राप्त हो। महाराज धृति से पूजित होकर भक्तवत्सल प्रद्युम्न सब लोगों के देखते-देखते अपने शिविर की ओर लौट गये।

विष्णुसहस्रनाम के (१४६-१६८) नामों की विशद् भाष्य (हिन्दी में) गताङ्क से आगे

इससे पूर्व अङ्क में श्रीविष्णुसहस्रनाम के १४५ नामों का अर्थ दिया गया है १४६वाँ नाम से यहाँ प्रारम्भ किया जा रहा है—

१४६. सहिष्णुः—सहते इति सहिष्णुः षहमर्षणे धातुः शीले इष्णुच् प्रत्ययः। दुःसहान् स्वभक्त विषयान् अनवधिकानपि अपराधान् सहते इति सहिष्णुः।

भगवान् अपने भक्तों के अपराधों को सहने वाले हैं, अतः सहिष्णु उनकी संज्ञा है।

१४७. जगदादिजः—आदि जातः आदिजः आदि पूर्वक प्रादुर्भावार्थक जन् धातुः ड प्रत्ययः जगति आदिजः जगदादिजः।

यहाँ पर जात शब्द से जन्म नहीं बल्कि प्रकट होना समझना चाहिए। सृष्टि के आदि में ब्रह्मा विष्णु और शिव–ये तीन मूर्तियाँ प्रकट होतीं हैं। भगवान् की प्रसन्नता से ब्रह्मा, क्रोध से रुद्र का जन्म होता है और स्वयं भगवान् विष्णुरूप में जगत् की रक्षा हेतु अवतीर्ण होते हैं। अतः भगवान् की जगदादिज संज्ञा हुई।

१४८. अनघः—न हन्ति पुण्यकर्माणि इति विग्रहः। हिंसार्थक हन् धातुः ड प्रत्ययः हस्य कुत्वेन घत्वे नञ् समासः अघः तत विरोधार्थे नञ् कृते अनघः इति।

संसारे विद्यमाने सत्यपि संसार में प्रकट होकर भी वे पाप से प्रभावित नहीं होते हैं। अतः अनघः (पापरहित) उनकी संज्ञा है।

१४९. विजयः—सृष्टिसंहारादिभिः जगद्विजयते अस्मादितिविग्रहः विपूर्वकजयार्थक जि धातुः एरच् प्रत्ययः।

ब्रह्मा के द्वारा सृष्टिरचना में तथा रुद्र के द्वारा संहार में सफलता उनकी ही विजय है। अतः विजेता उनकी संज्ञा है।

१५०. जेताः—जयति इति जेता, पूर्ववत् जि धातुः तृच् प्रत्ययः।

वे उन दोनों (ब्रह्मा और शिव) के विजेता हैं। कारण, उन दोनों की स्थिति और प्रवृत्ति भी भगवान् के ही अधीन है, अतः जेता उनकी संज्ञा है।

१५१. विश्वयोनिः—विश्वस्य योनिः कारणं यः स विश्वयोनिः।

ब्रह्मा एवं शिव के माध्यम से विश्व प्रपञ्च का कारण भगवान् ही हैं।

१५२. पुनर्वसुः—ब्रह्मादि प्रभृतिषु देवेषु अन्तरात्मतया पुनः वसति इति विग्रहः। पुनः पूर्वक वस निवासार्थक धातु ड प्रत्ययः।

भगवान् विश्व के केवल कारण ही नहीं अपितु ब्रह्मादि देवों के अन्तर्निवास भी करते हैं।

१५३. उपेन्द्रः—अनुजत्वेन इन्द्रमुपगतः इदि परमैश्वर्यार्थक धातुः नुमि, रन् प्रत्ययः। उप इत्यनेनसह समासः।

देव माता अदिति के पुत्र हैं–देवराज इन्द्र। उनके छोटे भाई के रूप में (वामन) भगवान् ने अवतार ग्रहण किया। इसीलिये वे उपेन्द्र कहलाते हैं।

१५४. वामनः—द्रष्टृन् स्व कान्त्या वामानि = सुखानि नयति इति टुवम् उद्गिरणेधातुः घञ् प्रत्ययः। तत णीञ् धातुः ड प्रत्यय टिलोपे वामनः।

असुर राज बलि के यज्ञ में वामन बौना (छोटा कद वाला) के रूप में उपस्थित होकर दर्शकों को अपनी करनी से सुखी किया। अतः वे वामन कहलाये हैं।

१५५. प्रांशुः—प्र पूर्वक अशु व्याप्तौ धातुः उ प्रत्ययः मुमागमे। प्राश्नुते = सर्वं व्याप्नोति इति प्रांशुः।

तीन पद पृथिवी का दान मिलते ही वामन ने विराट् रूप धारण किया। क्षणभर में ही उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर लिया। अतः प्रांशु उनकी संज्ञा है।

तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः।
तस्यविक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे।।
नभः प्रक्रममाणस्य नाभ्यां तौ समवस्थितौ।

सङ्कल्प का जल वामन भगवान् के हाथ में गिरते ही क्षण भर में वे वामन अवामन (प्रांशु) हो गये। भूमि नापते समय सूर्य, चन्द्र, छाती मध्य और आकाश नापते समय नाभि के समीप आ गये तथा स्वर्ग को नापते समय उनके घुटनों पर ही रह गये।

१५६. अमोघः—न मोघं = निष्फलं चेष्टितं यस्य स मुह धातुः घञ् प्रत्ययः। नञ् समासः अमोघः।

जिनका प्रभाव अपरिमित है तथा जिसकी कोई चेष्टा व्यर्थ नहीं होती, अतः वे अमोघ हैं।

१५७. शुचिः—पूतीभावार्थक ई शुचिर धातुः इन प्रत्ययः शुच्यति इति शुचिः।

भगवान् सबों को उपकार करते हैं। वामनावतार में उन्होंने देवराज इन्द्र और असुर राज बलि दोनों का ही उपकार किया। इस उपकार के बदले में वे प्रत्युपकार की आशा नहीं करते। यही उनके स्वभाव की शुद्धता है, अतः वे शुचि हैं।

१५८. ऊर्जितः—बलप्राणानार्थक ऊर्ज धातोः ऊ प्रत्ययः टापि ततः। ऊर्जा = बलं नित्यमस्य सञ्जाता इति इतच् प्रत्ययः।

नमुचि प्रभृति शत्रुओं के वध बन्धन में अपना बल प्रदर्शित करते हैं।

१५९. अतीन्द्रः—इन्द्रानुजत्वेऽप्यैश्वर्येणापदानेन तमतिकान्तः।

वे इन्द्र के अनुज तो हैं ही किन्तु उनका ऐश्वर्य इन्द्र से भी बढ़कर है, अतः वे अतीन्द्र कहलाते हैं।

१६०. सङ्ग्रहः—सङ्गृह्यते इति सङ्ग्रहः विग्रहः। संपूर्वक ग्रह धातुः अप प्रत्ययः। भक्तैः अयत्नेन सङ्गृह्यते।

वामनावतार में त्रिविक्रमरूप धारण कर भगवान् ने त्रिलोकी को नाप लिया। इस प्रकार भगवान् की सर्वत्र पहुँच हुई और विना किसी यत्न के ही भक्त जनों ने उनका साक्षात्कार किया, अतः वे सङ्ग्रह हैं।

१६१. सर्गः—सृज्यते भक्तेभ्यः सृज् विसर्गे धातुः घञ् प्रत्ययः।

भक्तों के लिये सृजनात्मक कार्य करते हैं। अतः भक्तगण एवं ब्रह्मादि सृष्टा हैं और वे सर्ग हैं।

१६२. धृतात्माः—आत्मदानेन धृता आत्मानो येन स धृञ् धारणार्थक धातुः कर्मणि क्त प्रत्ययः। अत धातोः मनिणि आत्मन् शब्दोव्युत्पादितः।

अवतार ग्रहण करने से भगवान् का आत्मदान होता है। आत्मदान द्वारा भगवान् जीवों को धारण करते हैं, अतः वे धृतात्मा हैं।

१६३. नियमः—नियम्यन्ते अनेन इति विग्रहः। नि पूर्वक यम उपर में धातु करने अय् प्रत्ययः।

भक्तजनों के विरोधी बलि प्रभृति का वे नियन्त्रण करते हैं, अतः नियमः उनकी संज्ञा है।

१६४. यमः—पूर्ववत् यम धातुः अच् प्रत्ययः अन्तर्यच्छति यमः।

विश्व के अखिल प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामि रूप से रहकर नियमन करने के कारण उनकी यम यह संज्ञा है–'आत्मानमन्तर्यमयति'।

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः।

अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ।।

१६५. वेद्यः—सर्वै वेदितुं शक्यः सौलभ्यातः ज्ञानार्थक विद् धातुः ण्यत् प्रत्ययः (कर्मणि) वेद्यः।

भगवान् में सौलभ्य गुण है, अतः सुलभतया सबों की जानकारी एवं प्रत्यक्ष होने से वेद्यः उनकी संज्ञा है।

१६६. वैद्यः—विद्यां = भवरोग विनिवर्तनीम् विद्यामधीते वेद वा विद्या शब्दात् अण् प्रत्ययः। विद् ज्ञाने धातु क्यप् टापि।

भगवान् भवरोग विनाशक विद्या जानते हैं, अतः वैद्य उनकी संज्ञा है।

१६७. सदायोगीः—भवरोगविनाशार्थं चिकित्सायां सदा जागर्ति इति युज धातुः भावे घञ् प्रत्ययः गुणे योगः। योगः अस्त्यस्य योगी।

भवरोग विनाश हेतु चिकित्सा में वे सदा सचेष्ट रहते हैं। अतः सदायोगी उनकी संज्ञा है।

१६८. वीरहाः—स्वध्यानमज्ञकान् वीरान् हतवान् इति हिंसार्थक हन् धातुः क्विप प्रत्ययः।

भक्तों के विरोधी वीरों को वे हनन करते हैं, अतः वीरहा उनका नाम है।

गायत्री मन्त्रार्थ रामायण

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धीयो यो नः प्रचोदयात्।

यह गायत्री मन्त्र है। इस गायत्री मन्त्र का जप करने का अधिकारी वहीं होते हैं जिनका यज्ञोपवीत संस्कार हो जाता है। जिनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हो उन्हें गायत्री मन्त्र का जप नहीं करना चाहिए। इस गायत्री मन्त्र में प्रथम 'ॐ' है। जिसको प्रणव कहते हैं। 'भूभुर्वः स्वः' यह व्याहृति है। 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धीयो यो नः प्रचोदयात्' यह गायत्री एक छन्द है। इस गायत्री में ॐ और भूर्भूवः स्वः इन्हें लगाने पर मन्त्र आ जाता है। गायत्री मन्त्र के देवता परमात्मा हैं। जो जगत् का सृजन, पालन करने वाले हैं। जपते समय उन्हीं के तेज का स्मरण ध्यान करके जप किया जाता है। अत एव श्रीमद्वाल्मीकि रामायण गायत्री स्वरूप का ही वर्णन करती है।

गायत्री का अर्थस्वरूप रामायण है। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्– यह गायत्री है। गायत्री एक छन्द है, जिसमें २४ अक्षर होते हैं। परतत्त्व श्रीनारायण के रूप में भगवान् श्रीराम का बालकाण्ड में वर्णन किया गया है, अतः बालकाण्ड 'तत्सवितुः' शब्दार्थ है। अयोध्या और किष्किन्धाकाण्ड में भगवान् के दिव्य गुणों का प्रतिपादन किया गया है, अतः ये दोनों काण्ड 'वरेण्य' शब्दार्थ हैं। अरण्यकाण्ड में श्रीराम के तेजोमय शरीर का वर्णन है, अतः यह काण्ड 'भर्ग' शब्दार्थ है। सुन्दरकाण्ड में श्रीराम के दिव्य मङ्गल विग्रह का वर्णन होने से यह 'देव' शब्दार्थ है। युद्धकाण्ड 'धीमहि' शब्दार्थ है। उत्तरकाण्ड में मुक्ति फल कहा गया है, अतः यह काण्ड 'धियो यो नः प्रचोदयात्' शब्दार्थ है।

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण गायत्री मन्त्र स्वरूपात्मक है। स्वामी सहजानन्द ने ब्रह्मर्षि वंश विस्तर पृष्ठ ३४० में गायत्री मन्त्र का परमात्मा परक अर्थ किया है, जो इस प्रकार है—ॐ = ओंकार स्वरूप वा सर्वरक्षक। भूर्भुवः स्वः = तीनों लोक-स्वरूप, या स्वयम्भू, सर्वाधार और आनन्द स्वरूप। तत् = सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित। वरेण्यं = सब के भजन और प्रार्थना के योग्य। सवितुः = जगत् और प्राणियों के

कल्याण को उत्पन्न करने वाले। देवस्य = स्वयं प्रकाश स्वरूप परमात्मा के। भर्ग: = ज्योति: स्वरूप को। धीमहि = हमलोग ध्यान करते हैं। य: = जो ज्योति: स्वरूप। न: = हमलोगों की। धिय: = बुद्धियों को। प्रचोदयात् = अपनी ओर, विचार और सत्कर्मों में लगावे। अर्थात् 'सम्पूर्ण जगत् के रचने वाले और प्राणियों के कल्याण कर्त्ता स्वयं प्रकाश स्वरूप परमात्मा के उस ज्योति:स्वरूप का ध्यान हमलोग करते हैं, जो ओंकार स्वरूप, और सर्वरक्षक तीनों लोक स्वरूप और स्वयम्भू, सर्वाधार, आनन्द स्वरूप सब शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित और सभी लोगों की प्रार्थना एवं भजन के योग्य है। वह ज्योति:स्वरूप हमारी बुद्धियों को अपनी ओर, सत्कर्म और विचार में लगावे।

महामुनि विश्वामित्र ने इसी गायत्री मन्त्र का जप करते हुए परमात्मा के तेज का ध्यान करते थे। उन्होंने सभी दिशाओं में परमात्मा में तन्मय होकर गायत्री मन्त्र का जप किया था। इससे उन्हें ब्रह्मतेज प्राप्त होता था और उससे श्रीराम तत्व का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया था। इसलिए श्रीरामावतार होने पर श्रीराजा दशरथ के पास सिद्धाश्रम जाने से पूर्व उन्होंने कहा कि अपनी यज्ञ रक्षार्थ भगवान् श्रीराम को लाऊँगा।

'प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा'।
एहूँ मिस देखौं पद जाई।
ग्यान विराग सकल गुन अयना।
सो प्रभु मैं देखब भरि नयना।।

ऐसा कहकर अयोध्याधिपति राजा दशरथ के पास पहुँच गए और उन्होंने श्रीराम लक्ष्मण को राजा दशरथ से माँगा। दशरथ अपने पुत्र श्रीराम का कुमारावस्था देखकर और राक्षसों से युद्ध करने में असमर्थ समझकर श्रीराम को देने को तैयार नहीं हुए। तब महामुनि विश्वामित्र ने कहा कि श्रीराम तत्त्व का ज्ञान मुझे है या मेरे समान तपस्या में लगे हुए वसिष्ठ आदि को है।

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः।।

(वा०रा० १९.१४.१५)

अत: उन्होंने कहा कि तुम अपने गुरु वसिष्ठ से पूछ लो और जब तुम्हें अनुमति दें तब तुम राम को समर्पण कर दो। महामुनि विश्वामित्र को गायत्री मन्त्र जपकाल में ध्यान करने से परमतत्त्व भगवान् श्रीराम का ज्ञान हो गया था।

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

मो0–09934419800
09430825896

उज्जैन में कुम्भ-स्नान

अनन्तश्री विभूषित स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज

श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)

उज्जैन कुम्भ के अवसर पर स्नान की विशेष तिथियाँ—

प्रथम स्नान— चैत्र शुक्ल पूर्णिमा २२-०४-२०१६
द्वितीय स्नान—वैशाख कृष्ण अमावस्या ०६-०५-२०१६
तृतीय स्नान— वैशाख शुक्ल तृतीया ०९-०५-२०१६
चतुर्थ स्नान— वैशाख शुक्ल पञ्चमी ११-०५-२०१६
पञ्चम स्नान— वैशाख शुक्ल पूर्णिमा २१-०५-२०१६

अर्चिरादिमार्ग

सच्चे श्रीमद्भगवद्भक्त श्रीवैष्णवगण अर्चिरादि-मार्ग से वैकुण्ठ जाते हैं। ऐसा ब्रह्मसूत्र में भी उल्लेख किया गया है–**'अर्चिरादिना तत्प्रथितेः'**। उन्हें वैकुण्ठ ले जाने के लिए भगवान् की ओर से अतिवाहिक भेजे जाते हैं–**'अतिवाहिकास्तल्लिङ्गात्'**। जैसे श्री शठकोपस्वामी ने सहस्रगीति के दशम शतक में अर्चिरादिमार्ग का वर्णन किया है, वैसे ही अनतन्तश्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज ने अर्चिरादिमार्ग का क्रमिक वर्णन किया है। सारे भगवद्भक्त वैष्णवों को अर्चिरादिमार्ग के पद्यों को याद कर लेना चाहिए, इसी दृष्टिकोण से पत्रिका में पद्य दिये जा रहे हैं—

दया किन्ह भगवान सन्त मोहि मिललन ये।
तब सन्त किये उपदेश शरण हरि के भये ये।।
दिन्ह ज्ञान भगवान हृदयतम भागल ये।
तब तन धन से मन भगवत के चरण लगाये।।
अन्तर्यामी कृपा करि धमनी धरवतन ये।
हरि अर्चि के पंथ बतलवतन ऊपर दिखबतन ये।।
अतिवाहिक देव मिलि मोहि रथ बइठवतन ये।
तब दिन पक्ष मास वर्ष पति पूजन करवतन ये।।
बात सूर्य विधु चपल वरुण इन्द्र विधि पुर ये।
पुनि जायेव बिरजा नहाएव तनहुँ विलायेव ये।।
अतिमानव भगवान स्वरूप निज देतन ये।
तब दिव्य विमान चढ़ाई देव लै जयतन ये।।
आरंग ताल नहायब गन्ध लग वाएव ये।
पुनि तिल तर भूषण वसन पहिर वनि जायेव ये।।
लक्ष्मी सरोवर पहुँचव बहुरि नहायेव ये।
पुनि बहुविधि से बहुमानित हो चल जायेव ये।।
नित्य सूरि तहँ मिलि सब हरि धुनि गवतन ये।
तब दिव्य लोक हम देखव शीश नवाएव ये।।
पाँव पाँव हम दौड़व हाबु हाबु बोलव ये।
मन देखतहि भगवान हँभर के बुलवतन ये।।
जातहि हम गिर जायेव हरि के चरण तर ये।
प्रभु चारिउ कर धर मोहि हृदय में लगवतन ये।।
शिर पर कर धर पुछतन बबुआ तु कहाँ हल हो।
तब तनु कर जन्म मरण दुःख कह समुझायेव ये।।
लक्ष्मी के गोद प्रभु देतन हम हँस बैठव ये।
मैया मुख चुम्बत चुचुकारत अधिक दुलारत ये।।
हृदय के जलन बुतायेत शान्ति सुखद जल से।
अति मोद उछाह प्रवाह सुनेह निवाहत ये।।
सेवन विधिहुँ बताई सेवा सब देतन ये।
तब नित नव नेह लगाइ सदा हम सेवव ये।।
ब्रह्मानन्द अघा के परम रस पायेव ये।
श्रीलक्ष्मीनाथ के साथ सुमाथ झुकायेव ये।।

विशेष सूचना

श्रीपराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् की ओर से २७ वर्षों से वैदिक-वाणी पत्रिका प्रकाशित हो रहीं है, जिनमें बहुत से भक्त प्रथम वर्ष में सदस्य बनने के बाद आज तक शुक्ल नहीं दिए हैं तथा कुछ ऐसे सदस्य भी हैं जिनका दो सौ रुपये से अधिक शुल्क बकाया हो गया है। उन सभी भक्तों को सूचित किया जा रहा है कि अगर पत्रिका प्राप्त करना चाहते हों तो शीघ्र बकाया शुक्ल भेद दें। अन्यथा अगले अङ्क से उनकी पत्रिका बन्द कर दी जायेगी।

समय-शुद्धि

संवत् २०७३ के वैशाख शुक्ल प्रतिपद से आषाढ़ कृष्ण अमावस्या तक शुक्र दोष के कारण विवाह, यज्ञोपवीत, गृहारम्भ, गृहप्रवेश आदि ये सारे माङ्गलिक कर्म नहीं होंगे।

भूमिहार ब्राह्मण परिचय

[सृष्टि के आरम्भ में वर्णों की उत्पत्ति हुयी, जिसमें अग्रजन्मा ब्राह्मण की उत्पत्ति सर्वप्रथम मानी जाती है। सृष्ट्यारम्भ से आज करोड़ों वर्ष व्यतीत हो गये। इस बीच संसार में अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव का होना स्वाभाविक है। इसी क्रम में ब्राह्मणों में भी युगानुसार परिवर्तन-परिवर्द्धन का स्वरूप हमें देखने को मिलता है। एक ही ब्राह्मण आज हजार नामों से विभक्त होकर अपना-अपना स्वत्व स्थापित किए हुए हैं। इन हजार ब्राह्मणों में भूमिहार ब्राह्मण का परिचय-बोधक उपदेश अनन्तश्री विभूषित स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज ने दिया है, जिसे भक्तों के ज्ञान हेतु वैदिक-वाणी पत्रिका में क्रमशः दिया जा रहा है—]

भारतवर्ष धर्मप्रधान देश है और धर्म का सम्यक् परिज्ञान धर्मशास्त्र (स्मृति) से होता है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में धर्म को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है–आश्रमधर्म और वर्णधर्म। शेष कार्य एवं अवस्था भेद से उत्पन्न धर्म का समाहार स्मृति प्रतिपादित आश्रमधर्म एवं वर्णधर्म में ही हो जाता है। स्मृतियों में आश्रमधर्म के अन्तर्गत ब्रह्मचर्याश्रम, गार्हस्थ्य आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम का वर्णन प्राप्त होता है। वर्णधर्म में–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र धर्म का प्रवचन ऋषियों ने किया है। किसी भी स्मृति में जातिधर्म का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। यद्यपि स्मृतिकारों ने जाति शब्द का प्रयोग तो किया है, किन्तु उसका स्वतन्त्र स्वरूप न देकर वर्ण के उपलक्षक के रूप में प्रयोग किया है। भारतीय परम्परा के अनुसार यह तो निर्विवाद रूप से मान्य है कि मानवी पिता मनु द्वारा प्रवर्तित वर्णधर्म सृष्टि के आरम्भ से ही प्रचलित है और जिसमें चार वर्ण हैं, जिनमें ब्राह्मण (अग्रजन्मा) सर्वोपरि है। प्रजापति ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने के कारण इस वर्ण का नाम ब्राह्मण पड़ा। ब्राह्मण का अन्य नाम पृथक्-पृथक् कोशकारों ने दिया है। अमर कोश के अनुसार—

आश्रमोऽश्री द्विजत्यग्र जन्मभूदैव बाड़वाः।
विप्रश्च ब्राह्मणोऽसौ षटकर्मा यागादिभिर्वृतः।।

(द्विज, अग्रजन्मा, भूदेव, वाडव, विप्र और ब्राह्मण–ये छः नाम ब्राह्मणों के हैं। शब्दरत्नावलि में कुछ और विस्तार से लिखा है—द्विज, सूत्रकण्ठः, ज्येष्ठवर्णः, अग्रजातकः, द्विजन्मा, वक्रज, मैत्र, वेदवासः, नयः और गुरु। राजनिघण्टुकार ने मात्र तीन ही नाम गिनाया है–ब्रह्मा, षट्कर्मा और द्विजोत्तम।

सृष्टि के आरम्भ में ब्राह्मण एक ही थे, उनमें किसी प्रकार का विभेद नहीं था अर्थात् ब्राह्मण एक ही वर्ण अथवा जाति थी। किन्तु समय के अनुसार इनमें दल (विभाजन होते) बनते गये। प्रारम्भ में ब्राह्मण समाज दो दलों में विभाजित हुआ, जिसकी संज्ञा हुई दक्षिण (द्राविड़) एवं उत्तर (गौड़)। पुनः इनमें भी पाँच-पाँच भेद हुए जिसकी संज्ञा हुई–पञ्चगौड़ और पञ्चद्राविड़।

सृष्ट्यारम्भे जातिरेका ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिता।
एवं पूर्वं जातिरेकादेशभेदाद्द्विधा भवत्।।
गौडद्राविडभेदेन ताभ्यां भेदा दशाभवत्।
सारस्वताः कान्यकुब्जा गौडमैथिल उत्कलाः।।
पञ्चगौडाः समाख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः।
तैलंगाश्च महाराष्ट्रा द्राविड़ा गुर्जरास्तथा।।
कर्णाटकाः समाख्याता विन्ध्यदक्षिणवासिनः।

जिस प्रकार समय के अनुसार ब्राह्मणों के विन्ध्यावधि मानकर उत्तर-दक्षिण के विभाजन से दो भेद हुए, उसी प्रकार कालान्तर में इन दोनों के भी पाँच-पाँच भेद स्थान विशेष के आधार पर हुए—

पञ्चगौड़ के अन्तर्गत–सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल एवं उत्कल (उड़ीसा प्रान्त के ब्राह्मण) तथा पञ्चद्राविड़ के अन्तर्गत–तैलंग, महाराष्ट्री, द्राविड़, गुर्जर एवं कर्णाटक के ब्राह्मणों के भेद स्थापित हुए।

पुन: कालक्रम के अनुसार पञ्चगौड़ और पञ्चद्राविड़ ब्राह्मणों का विस्तार अथवा विभाजन हुआ। प्रकृत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय कान्य-कुब्ज ब्राह्मणों के वंश विस्तार से सम्बन्धित है। अत: पञ्चद्राविड़ों एवं अन्यों के प्रसङ्ग को यहाँ विरमित कर कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के विस्तार का कथन करना ज्यादा उपयुक्त होगा। अस्तु पञ्चगौड़ों में सारस्वतादि के साथ कान्यकुब्ज ब्राह्मण का भी पाँच भागों में विस्तार अथवा विभाजन हुआ। यथा—सरवरिया, सन्नौधा, जिझौनिया, भूमिहार एवम् प्रसिद्ध कन्नौजिया। पुन: कान्यकुब्ज ब्राह्मण के पाँचों उपभेदों के अनेक उपभेद हुए और विभिन्न नामों एवं उपाधियों से भूषित होकर शिवालिक के पहाड़ियों से लेकर बंगाल की खाड़ी तक के विस्तृत भूभाग में ये फैल गये। इनका मूलस्थान को छोड़कर अन्यत्र जाने में यवनों का साम्राज्य मुख्य हेतु रहा। क्योंकि मुगलों में हिन्दू धर्म के प्रति द्वेष की भावना जन्मजात होती है। मुगलशासक हिन्दुओं को धर्मपरिवर्तन कराने हेतु सभी प्रकार के मार्ग अपनाते थे। कुछ को धन आदि देकर तो कुछ को प्राणभय देकर मुसलमान बनाते थे। ऐसी स्थिति में बहुतों ने तो युद्ध में अपना सर्वस्व समाप्त कर दिया और बहुतों ने पलायन कर दिया। पलायन करने वालों को जहाँ भी सुरक्षित स्थान मिला वहीं बस गये और यथाप्राप्त जीविका से जीवन निर्वाह करने लगे। उन दिनों ब्राह्मणों के लिए जीविका के बहुत विकल्प नहीं थे, या तो वे कृषि कर सकते थे अथवा प्रतिग्रह द्वारा अपना जीवन व्यतीत कर सकते थे। वस्तुत: पुराकाल से ही ब्राह्मणों के लिए ये दोनों विकल्प प्राप्त थे। जिसका उदाहरण मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय, गौतमस्मृति, महाभारत सभापर्व, हारीतस्मृति आदि अनेक स्मृतियों एवं पुराणों को देखने से ज्ञात होता है। अत: अपने मूल स्थान से अन्य स्थानों पर विस्थापित ब्राह्मणों ने यथा प्राप्त जीविका का आश्रयण किया और शनै: शनै: देशज उपाधियों से स्वयं को विभूषित कर लिया।

वंशविस्तार के साथ बटवारा नैसर्गिक सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है और बटवारा द्वेष को जन्म देता है। कभी-कभी यह द्वेष अन्तर्मुखी रहता है तो कभी बहिर्मुखी होकर वीभत्सरूप धारण कर लेता है। ब्राह्मणों के विस्तार रूपी भेद भी इस नियम का अपवाद नहीं रहा। काव्यकुब्ज के पाँचों उपभेद भी इसी सिद्धान्त से आविर्भूत हुए। अत: परस्पर द्वेष का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक था। सर्वाधिक द्वेष का शिकार भूमिहार ब्राह्मण अर्थात् अयाचक ब्राह्मण हुआ। कुछ समय पूर्व अर्थात् १५०-३०० वर्ष पूर्व ईर्ष्या-द्वेष रूपी सागर के गोताखोरों ने एक वितण्डावाद उपस्थित करने का निर्मूल प्रयास यह कहकर किया कि भूमिहार, तगा, त्यागी आदि अयाचकगण कृषिकार्य करते हैं और दान ग्रहण नहीं करते, अत: वे ब्राह्मण नहीं हैं। यद्यपि यह कहकर वक्ता अपर को दूषित करने के कुत्सित प्रयास में स्वयं को ज्यादा दूषित कर लिया; क्योंकि ऊपर वर्णित ब्राह्मणों की उत्पत्ति से लेकर विकास तथा विभेद का सङ्क्षेपरूप से वर्णन किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि सभी ब्राह्मण एक ही वंश के हैं, एक ही माता-पिता के सन्तान हैं तब फिर एक ब्राह्मण और दूसरा अब्राह्मण कैसे हो सकता है?

ऊपर वर्णित तथ्यों से यह तो स्पष्ट हो गया है कि वर्तमान समय में तथाकथित सभी उपाधि एवं नामधारी ब्राह्मणों की उत्पत्ति, स्थिति एक ही रही किन्तु समय के विकास के साथ इनका भी विकास हुआ। विकास शब्द से यहाँ सङ्ख्यात्मक विकास

ग्रहण करना चाहिए, जिसमें संख्या, क्षेत्र, उपाधि उपजाति आदि हैं। स्मृतिकारों ने जहाँ भी वर्णधर्म का उपदेश किया है, वहाँ कर्म का भी उपदेश प्राप्त होता है; क्योंकि वर्णधर्म के अनुसार उत्पत्ति और कर्म दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। यद्यपि यह विषय अति व्यापक है और विभिन्न ऋषियों द्वारा इस पर पर्याप्त व्याख्यान उपलब्ध होता है, अत एव उसकी सम्यक् मीमांसा यहाँ सम्भव नहीं है, किन्तु निष्कर्ष रूप में ब्राह्मणी माता और ब्राह्मण पिता के रज-वीर्य से उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण होता है और वैदिक रीति से संस्कारित (उपनयनादि) होने के बाद उसमें द्विजत्व की प्राप्तिपूर्वक ब्राह्मणत्व का संस्कार आता है। यदि ब्राह्मण माता-पिता के रज-वीर्य से उत्पन्न होने के उपरान्त कोई व्यक्ति शास्त्रमर्यादा (वर्णधर्म) के विपरीत आचरण करता है, तब वह अपने वर्णधर्म (ब्राह्मणधर्म) से च्युत हो जाता है। मन्वादि ऋषियों द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्रीय वचनों का मुख्य भाव यही है। इसी तथ्य को आधार बनाकर कुछ अज्ञानियों, दरिद्रों तथा हीन भावना से ग्रसितों ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि भूमिहार ब्राह्मण नहीं हैं; क्योंकि ये दान नहीं लेते, कृषि कर्म करते हैं तथा उन लोगों ने अपने द्वारा कथित विषय की पुष्टि हेतु यह प्रमाण देने लगे कि दान ग्रहण करना ब्राह्मणों का अधिकार है और यदि ये (भूमिहारादि) ब्राह्मण हैं तो दान क्यों नहीं लेते। उन अज्ञानियों द्वारा यह बात पूर्ण जोश के साथ प्रचारित की गई, जिससे शनैः शनैः समाज में यह धारणा फैलने लगी कि भूमिहार ब्राह्मणेतर हैं। एक लोकोक्ति है कि किसी असत्य को सौ बार कहने पर वह सत्य रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। अस्तु उपर्युक्त प्रश्न पर थोड़ा विचार करना आवश्यक है।

उन अज्ञानियों द्वारा उपस्थापित प्रश्न के प्रारम्भ में जन्म (भूमिहारों की उत्पत्ति) विषयक सन्देह का स्थान नहीं था; क्योंकि भूमिहारों की उत्पत्ति में सन्देह व्यक्त करने पर उससे पूर्व वे स्वयं संदिग्ध हो जाते (इसका स्पष्ट प्रमाण वंशावलीग्रन्थ के आठवें अध्याय में वर्णित है)। अतः उन्होंने कर्म के आधार पर भूमिहार ब्राह्मणों को अब्राह्मण कोटि में दर्शाने का मिथ्या दुराग्रह करने की चेष्टा की। यहाँ यह ध्यातव्य है कि क्या कृषिकर्म करने से वस्तुतः ब्राह्मणत्व की हानि होती है? क्या ब्राह्मण के लिए कृषिकर्म करना निन्दनीय है? क्या आर्ष ऋषियों ने ब्राह्मण को कृषिकर्म नहीं करने के लिए उपदेश दिया है? आदि। इन प्रश्नों का सम्यक् निराकरण स्मृति, पुराणादि के विना सम्भव नहीं है। सर्वप्रथम हम स्मृतियों पर ध्यान दें। आद्यस्मृति के रूप में मनुस्मृति है, कोई भी स्मृति मनुस्मृति के विपरीत कथन करती है, तो वह अप्रामाणिक मानी जाती है। मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय ५-६ श्लोक द्वारा ब्राह्मण के जीविका का कथन किया गया है। यहाँ यह विशेष ध्यातव्य है कि जीविका और कर्म दोनों अलग-अलग हैं। यहाँ कर्मप्रधान है, जीविका अप्रधान। भगवान् मनु ने कहा है—

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति।।

(मनु० ४.९)

(शेष क्रमशः अगले अङ्क में)

श्रीस्वामी जी महाराज का 2015 एवं 2016 वर्षीय कार्यक्रम

क्र.सं.	मास	पक्ष	तिथि	दिन	दिनाङ्क कब से कब तक
१.	कार्तिक	कृष्ण	द्वितीया	गुरुवार	२९-१०-२०१५ से ०४-११-२०१५ तक विहटा में साप्ताहिक कथा
२.	कार्तिक	शुक्ल	प्रतिपदा	गुरुवार	१२-११-२०१५ से १८-११-२०१५ तक कैथी में साप्ताहिक कथा
३.	अगहन	कृष्ण	अष्टमी	गुरुवार	०३-१२-२०१५ से ११-१२-२०१५ तक मुजफ्फरपुर में नवाह यज्ञ
४.	अगहन	शुक्ल	प्रतिपदा	शनिवार	१२-१२-२०१५ से १८-१२-२०१५ तक पाण्डेयकर्मा में साप्ताहिक कथा
५	अगहन	शुक्ल	नवमी	शनिवार	१९-१२-२०१५ से २५-१२-२०१५ तक डुमरा में साप्ताहिक कथा
६.	पौष	कृष्ण	द्वितीया	रविवार	२७-१२-२०१५ से ०२-०१-२०१६ तक सुल्तानपुर में साप्ताहिक कथा
७.	पौष	कृष्ण	दशमी	सोमवार	०४-०१-२०१६ से १०-०१-२०१६ तक गोढ़ना (पैनाल) के पास साप्ताहिक कथा (पटना)
८.	पौष	शुक्ल	द्वितीया	सोमवार	११-०१-२०१६ से १९-०१-२०१६ तक भारतीपुर में वाल्मीकिरामायण कथा एवं शिवप्रतिष्ठा
९.	माघ	कृष्ण	प्रतिपदा	सोमवार	२५-०१-२०१६ से ३१-०१-२०१६ तक ओढ़नपुर (नवादा) में साप्ताहिक कथा
१०.	माघ	कृष्ण	नवमी	मंगलवार	०२-०२-२०१६ से ०८-०२-२०१६ तक सीमा (औरंगाबाद) श्रीमद्भागवत कथा एवं यज्ञ
११.	माघ	शुक्ल	प्रतिपदा	मंगलवार	०९-०२-२०१६ से १५-०२-२०१६ तक बाबू अमौना (औरंगाबद) कथा एवं हनुमत्प्रतिष्ठा
१२.	माघ	शुक्ल	नवमी	मंगलवार	१६-०२-२०१६ से २२-०२-२०१६ तक नगाईन (औरंगाबाद) श्रीमद्भागवत कथा एवं हनुमत्प्रतिष्ठा
१३.	फाल्गुन	कृष्ण	प्रतिपदा	मंगलवार	२३-०२-२०१६ से २९-०२-२०१६ तक महमदपुर के पास साप्ताहिक कथा एवं सूर्यप्रतिष्ठा
१४.	फाल्गुन	कृष्ण	नवमी	गुरुवार	०३-०३-२०१६ से ०९-०३-२०१६ तक भेलवा हिसुआ (नवादा) में साप्ताहिक कथा
१५.	फाल्गुन	शुक्ल	द्वितीया	गुरुवार	१०-०३-२०१६ से १६-०३-२०१६ तक भोरी में कथा
१६.	फाल्गुन	शुक्ल	अष्टमी	बुधवार	१६-०३-२०१६ से २२-०३-२०१६ तक कौरी में साप्ताहिक कथा एवं स्वामी जी की जयन्ती
१७.	चैत्र	कृष्ण	द्वितीया	शुक्रवार	

(शेष अगले पृष्ट (३९) पर देखें)

गृहारम्भ मुहूर्त्त

(१) पौष शुक्ल एकादशी बुधवार २०-०१-२०१६ को दिन में १२:४५ से ०२:४० तक।
(२) माघ शुक्ल दशमी बुधवार १७-०२-२०१६ को दिन में १०:४९ से १२:४४ तक।
(३) फाल्गुन कृष्ण तृतीया गुरुवार २२-०२-२०१६ को दिन में १०:१९ से १२:१४ तक।
(४) चैत्र शुक्ल पूर्णिमा शुक्रवार २२-०४-२०१६ को दिन में ०८:४५ से १०:५५ तक।

●

गृहप्रवेश-मूहुर्त्त

(१) माघ कृष्ण दशमी बुधवार ०३-०२-२०१६ को दिन में ०८:४३ से ०९:१० तक।
(२) माघ शुक्ल दशमी बुधवार १७-०२-२०१६ को दिन में १०:४९ से १२:४४ तक
पुन: रात्रि में ०७:३१ से ०९:४३ तक।
(३) फाल्गुन कृष्ण एकादशी शनिवार ०५-०३-२०१६ को प्रात: ०६:४० से ०८:०७ तक।

●

द्विरागमन-मूहुर्त्त

पूर्व से पश्चिम उत्तर से दक्षिण वायव्य से अग्नि ईशान से नैर्ऋत्यकोण के लिए—
(१) अगहन शुक्ल तृतीया सोमवार १४-१२-२०१५ को १२:२४ से ०१:५१ तक
(२) अगहन शुक्ल पञ्चमी बुधवार १६-१२-२०१५ को १२:१५ से ०१:४३ तक
उत्तर से दक्षिण वायव्यकोण के लिए—
(३) माघ शुक्ल दशमी बुधवार १७-०२-२०१६ को १०:४९ से १२:४४ तक
पूर्व से पश्चिम उत्तर से दक्षिण वायव्य से अग्नि ईशान से नैर्ऋत्यकोण के लिए—
(४) माघ शुक्ल द्वादशी शुक्रवार १९-०२-२०१६ को १०:४२ से १२:३७ तक
उत्तर से दक्षिण वायव्य से अग्निकोण के लिए—
(५) फाल्गुन कृष्ण तृतीया गुरुवार २५-०२-२०१६ को १०:१९ से १२:१४ तक
पूर्व से पश्चिम ईशान से नैर्ऋत्यकोण के लिए—
(६) फाल्गुन शुक्ल तृतीया शुक्रवार ११-०३-२०१६ को ०९:२३ से ११:१८ तक

●

(पृष्ट ३८ शेष भाग)

१८. चैत्र	कृष्ण	नवमी	शुक्रवार	०१-०४-२०१६ से ०७-०४-२०१६ तक रघुनाथपुर में साप्ताहिक कथा
१९. चैत्र	शुक्ल	प्रतिपदा	शुक्रवार	०८-०४-२०१६ से १४-०४-२०१६ तक मायर (औरंगाबाद) में साप्ताहिक कथा
२०. चैत्र	शुक्ल	दशमी	शनिवार	१६-०४-२०१६ से मुंजहड़ में कथा एवं देवस्थापना
२१. वैशाख	उज्जैन में		२२. ज्येष्ठ कृष्ण	गंभीर बाबा अराप में कथा
२३. ज्येष्ठ	शुक्ल		२४. ज्येष्ठ शुक्ल	
२५. आषाढ़	कृष्ण			११-०७-२०१६ से (जललापुर) महुअरी में प्रतिष्ठा

श्रीवैष्णवव्रत निर्णय तालिका-वर्ष-2016-17

क्र.सं.	मास	पक्ष	तिथि	दिन	दिनाङ्क	व्रतनाम
१.	चैत्र	शुक्ल	११	रविवार	१७-४-२०१६	कामदा
२.	वैशाख	कृष्ण	११	मङ्गलवार	०३-०५-२०१६	बरुथिनी
३.	वैशाख	शुक्ल	११	मङ्गलवार	१७-०५-२०१६	मोहिनी
४.	ज्येष्ठ	कृष्ण	११	बुधवार	०१-०६-२०१६	अचला
५	ज्येष्ठ	शुक्ल	११	गुरुवार	१६-०६-२०१६	निर्जला
६.	आषाढ़	कृष्ण	१२	शुक्रवार	०१-०७-२०१६	योगिनी
७.	आषाढ़	शुक्ल	११	शुक्रवार	१५-०७-२०१६	श्री विष्णुशयनी
८.	श्रावण	कृष्ण	११	शनिवार	३०-०७-२०१६	कामदा
९.	श्रावण	शुक्ल	११	रविवार	१४-०८-२०१६	पुत्रदा
१०.	भाद्रपद	कृष्ण	११	रविवार	२८-०८-२०१६	जया
११.	भाद्रपद	शुक्ल	१२	मङ्गलवार	१३-०९-२०१६	पद्मा
१२.	आश्विन	कृष्ण	११	सोमवार	२६-०९-२०१६	इन्दिरा
१३.	आश्विन	शुक्ल	११	बुधवार	१२-१०-२०१६	पापाङ्कुशा
१४.	कार्त्तिक	कृष्ण	११	बुधवार	२६-१०-२०१६	रम्भा
१५.	कार्त्तिक	शुक्ल	१२	शुक्रवार	११-११-२०१६	प्रबोधिनी
१६.	अगहन	कृष्ण	११	शुक्रवार	२५-११-२०१६	उत्पन्ना
१७.	अगहन	शुक्ल	११	शनिवार	१०-१२-२०१६	मोक्षदा
१८.	पौष	कृष्ण	११	शनिवार	२४-१२-२०१६	सफला
१९.	पौष	शुक्ल	११	रविवार	०८-०१-२०१७	पुत्रदा
२०.	माघ	कृष्ण	११	सोमवार	२३-०१-२०१७	षट्तिला
२१.	माघ	शुक्ल	११	मङ्गलवार	०७-०२-२०१७	जया
२२.	फाल्गुन	कृष्ण	११	बुधवार	२२-०२-२०१७	विजया
२३.	फाल्गुन	शुक्ल	११	बुधवार	०८-०३-२०१७	आमलकी
२४.	चैत्र	कृष्ण	११	शुक्रवार	२४-०३-२०१७	पापमोचनी

१.	चैत्र	शुक्ल	९	शुक्रवार	१५-०४-२०१६	श्रीराम नवमी व्रत
२.	वैशाख	शुक्ल	१४	शुक्रवार	२०-०५-२०१६	श्रीनृसिंह चतुर्दशी
३.	वैशाख	शुक्ल	५	बुधवार	११-०५-२०१६	श्रीरामानुजाचार्य जयन्ती
४.	भाद्रपद	कृष्ण	९	शुक्रवार	२६-०८-२०१६	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
५.	भाद्रपद	शुक्ल	१३	बुधवार	१४-०९-२०१६	श्रीवामन द्वादशी
६.	फाल्गुन	शुक्ल	१३	शुक्रवार	१०-०३-२०१७	श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जयन्ती